

बाल निर्माण की कहानियाँ

१३

बाल निर्माण की कहानियाँ

(भाग-१३)

लेखिका :
डॉ० आशा 'सरसिज



प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो० ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं० २५३०२००

पुनर्मुद्रित सन् २०१४ मूल्य : ११.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

लेखिका
डॉ० आशा 'सरसिज'

पुनरावृत्ति सन् २०१४

मूल्य : ११.०० रुपये

मुद्रक
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

प्राक्कथन

बच्चों के मन में अध्यात्म एवं जीवन कला के विभिन्न सूत्र कथाओं के माध्यम से सरलता से स्थापित किए जा सकते हैं। इसी अवधि में मस्तिष्क का सर्वाधिक विकास होता है। भला-बुरा जो भी प्रभाव होता है, वे ग्रहण करते व तदनुसार अपना व्यक्तित्व विनिर्मित करते हैं। यह अभिभावकों व परिकर के संपर्क में आने वाले माध्यमों पर निर्भर है कि बालक-मन को वह किस प्रकार गढ़ते हैं।

बाल निर्माण की कहानियों के बारह भाग पिछले दिनों युग निर्माण योजना द्वारा प्रकाशित किए गए। प्रसन्नता की बात है कि विदेशी अथवा फूहड़ कॉमिक्स के सामने ये कहानियाँ सुरुचि, श्रेष्ठ ठहरीं एवं परिजनों ने इन कथा पुस्तकों की भूरि-भूरि सराहना की। इनके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। सोचा यह गया कि बालकों के लिए तो साहित्य लिखा गया और पसंद भी किया गया। उठती वय के किशोरों के लिए ऐसे साहित्य का सृजन अभी नहीं हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक माला इसी शृंखला की अगली कड़ी

है। इसमें मूलत: किशोरों को दृष्टि में रखते हुए कथा साहित्य रचा गया है। लेखिका ने बाल मनोविज्ञान का बड़ी गहराई से अध्ययन किया है, वही अध्ययन अनुभव इन कथानकों के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। हमें पाठकों अभिभावकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

–डॉ० प्रणव पंड्या
(एम० डी०)
ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान
हरिद्वार (उत्तराखंड)



सार्थक जीवन

एक बार ओजस अपने माता-पिता के साथ कलकत्ता जा रहा था। वहाँ उसके मामाजी रहते थे। उनके बेटे का विवाह था, उसी में सम्मिलित होने के लिए सभी जा रहे थे। लंबा रास्ता और रात का सफर था। सभी खा-पीकर लेट गए थे। ठंडी हवा के झोंके लगे तो जल्दी ही यात्रियों को नींद आने लगी।

अर्द्धरात्रि की नीरवता थी। गाड़ी थोड़ी देर पूर्व ही मुगलसराय स्टेशन से आगे बढ़ी थी। वह पूरी गति से दौड़ रही थी। अधिकांश यात्री सोए हुए थे। सहसा शोरगुल सुनकर ओजस की आँख खुल गई। वह ऊपर की वर्थ पर लेटा हुआ था। उसने नीचे झाँक कर देखा तो वह चौंक पड़ा। एक लुटेरा बंदूक ताने खड़ा था और दूसरा उसके साथ खड़ा हुआ लोगों के कीमती सामान बटोर रहा था। डिब्बे में अनेक व्यक्ति थे, परंतु बंदूक के डर से वे कोई प्रतिरोध नहीं कर पा रहे थे। वे चुपचाप अपने पैसे, आभूषण और अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ उन्हें सौंपते जा रहे थे। ओजस की माँ ने भी अपना सूटकेस पकड़ा दिया था। ओजस जानता था कि उसमें कीमती साड़ियाँ और आभूषण हैं। वह तिलमिला उठा। तभी उसने देखा की उसकी माँ रो रही हैं। एक दूसरी महिला भी गिड़गिड़ाती हुई लुटेरे से कह रही थी-'मेरा बेटा अस्पताल में भरती है। उसके इलाज के लिए रुपयों की सख्त जरूरत है। मुझ पर दया करो। मेरा हार मुझे दे दो। इसे बेचने पर ही मैं बेटे की दवा के लिए रुपए जुटा पाऊँगी।

परंतु लुटेरों पर तो किसी बात का कोई प्रभाव ही न था। उलटे बंदूकधारी ने बंदूक का कुंदा उसके सिर पर मारते हुए कहा-

'बुढ़िया! बक-बक मत कर। चुप रह, नहीं तो एक गोली में ढेर हो जाएगी।

ओजस का किशोर-रक्त बड़ी देर से खौल रहा था। वह भीरु, कायर या स्वार्थी नहीं था जो विपत्ति देखकर डर जाता या केवल अपने बचाव की बात सोचता और दूसरों की परेशानी को अनदेखा कर देता। ऐसे व्यक्तियों को तो वह समाज और राष्ट्र का भार माना करता था। ओजस यह भी जानता था कि संकट के समय यदि साहस न खोया जाए और मिल-जुल कर कोई उपाय अपनाया जाए तो रास्ता मिल ही जाता है। उसे सहसा ही एक विचार आया। पास बैठे एक लड़के के कान में उसने कुछ कहा। दोनों ने ही एक-एक सूटकेस उन लुटेरों के सिर पर ऊपर से खींचकर मारा। निशाने ठीक लगे थे। बंदूक छिटक कर दूर जा गिरी थी। दोनों व्यक्तियों ने हाथों से अपना सिर थाम लिया था। दो किशोरों को इस प्रकार आततायियों का प्रतिरोध करते देखकर अब बड़ों में भी साहस का संचार हो गया था। चार-पाँच युवकों ने उन दोनों लुटेरों को कसकर पकड़ लिया। एक ने जल्दी में चैन खींच दी। दूसरा गाड़ी रुकते ही तुरंत पुलिस को बुला लाया। पुलिस ने आते ही उन दोनों को गिरफ्तार कर लिया।

रेल के यात्री ओजस और उसके साथी की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। सभी का सामान वापिस मिल चुका था। हार लुट जाने वाली बुढ़िया तो ओजस को बार-बार दुआएँ दे रही थी। तभी एक प्रौढ़ व्यक्ति भीड़ को चीरता हुआ ओजस के पास आया। वह एक दैनिक समाचार-पत्र का संवाददाता था। उसने दोनों किशोरों की फोटो खींची और ओजस का साक्षात्कार लिया। उसने पूछा-'क्या तुम्हें डर नहीं लगा। यदि तनिक भी निशाना चूक जाता तो क्या होता....?

ओजस बोला-'होता क्या? अधिक से अधिक यही न कि वह मुझे मार देता। यदि अच्छे कार्य के लिए प्राण भी

चले जाएँ तो क्या हानि है? प्राणों के भय से अन्यायी, अत्याचारी का प्रतिरोध न करना क्या बुद्धिमानी कही जा सकती है? हम वहीं परास्त होते हैं, जब प्राणों का अनुचित मोह करके डरपोक बन जाते हैं अन्यथा, क्या ऐसा संभव है कि इतने सारे व्यक्तियों की भीड़ के रहते दो लुटेरे अपने कार्य में सफल हो जाएँ?'

ओजस की बात सही थी। उसने बड़ों को भी उनकी गलती की ओर संकेत कर दिया था। जो साहस उन्होंने न किया था, वह एक किशोर ने कर दिखाया था।

अगले दिन एक प्रमुख दैनिक समाचार-पत्र ने समस्त घटना का विवरण देते हुए ओजस का चित्र तथा साक्षात्कार प्रकाशित किया। समाजसेवी संस्थाओं ने पुरस्कार प्रदान कर इस साहसी किशोर का सम्मान किया। आत्मविश्वासी की सामयिक सूझबूझ और सक्रियता ही उसे घोर संकट से उबरने का साहस देती है और सफल भी बनाती है। साहसी सामान्य से ऊँचा होता है, इसलिए वह साधारण लोगों का नायक बन उनके लिए संकट से जूझने और कुछ करने की प्रेरणा बन जाता है। प्रत्येक बालक-बालिका इस प्रकार प्रतिभा और कर्मनिष्ठा से देश का गौरव बनें, ऐसी समाज और राष्ट्र की आकांक्षा रहती है। आओ! हम सब इसे पूरा करने में लगे रहें।

सदाचार, प्रगति का द्वार

सुमन के पिता जयपुर के एक प्रसिद्ध प्राचीन राजमहल में चौकीदार थे। सुमन उनकी एकमात्र पुत्री थी। माता-पिता की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी। परंतु पुत्री की शिक्षा-दीक्षा में उन्होंने कोई कमी न रखी थी। वे उसे अच्छे स्कूल में पढ़ाते थे, साथ ही उसकी माँ जानती थीं कि इससे बालक का विकास ही होता है।

गलत करने पर भी वे उसे प्यार से समझातीं और सही बात बतातीं-सिखातीं। माँ की इस प्रकार की शिक्षा के कारण सुमन कम आयु में ही बड़ी समझदार बन गई थी। अभी वह मात्र दस वर्ष की ही थी, सातवीं कक्षा में पढ़ती थी, पर उसकी समझ अपने साथियों से कहीं अधिक थी। उसका व्यवहार भी बड़ा शिष्ट, सभ्य था। व्यवहार से ही दूसरे व्यक्ति हमारी ओर आकर्षित होते हैं और हमारा सच्चा सम्मान करते हैं।

एक दिन कुछ अतिथि राजभवन देखने के लिए आए। ये प्रवेश-द्वार खोज रहे थे। सुमन राजमहल के बाहर मैदान में ही खेल रही थी। वह कुछ देर तो उन्हें देखती रही, फिर अतिथियों को इधर-उधर बढ़ते देखकर उनके सामने आई और बोली-'आपको राजमहल देखना है क्या?'

'हाँ!' उन व्यक्तियों ने उत्तर दिया।

'आइए! मेरे पीछे आइए।' सुमन बोली।

अतिथि सुमन के पीछे-पीछे चल दिए। यह उन्हें बहुत अच्छा लगा कि बिना कहे ही बालिका ने उनका इस प्रकार ध्यान रखा था।

'तुम कहाँ रहती हो बेटी?' एक महिला ने पूछा।

सुमन ने बड़ी विनम्रता से उन्हें बताया कि उसके पिता वहाँ चौकीदार हैं, उसने अतिथियों को अपने पूरे परिवार से भी परिचित करा दिया। फिर उसने स्वयं ही कहा-'आइए! मैं आपको राजभवन दिखलाती हूँ।'

अतिथियों को भला क्या आपत्ति हो सकती थी? उसके साथ रहने पर तो उन्हें सुविधा ही होती, रास्ते की खोज में इधर-उधर भटकना न पड़ता। अतएव उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्वीकृति दे दी। अब सुमन अतिथियों को उस विशाल राजभवन का एक-एक स्थान दिखाने लगी। वह केवल उन्हें

घुमा ही नहीं रही थी अपितु प्रत्येक स्थान का बड़ा सुंदर सटीक परिचय भी दे रही थी। उसके ऐतिहासिक विवरण भी पूर्णतया सत्य थे। अतिथियों ने सोचा भी न था कि एक छोटी सी बालिका उनकी इतनी अच्छी 'गाइड' सिद्ध होगी। वे उसके वाकचातुर्य से अत्यधिक प्रभावित थे।

अतिथियों ने चलते समय सुमन को कुछ सामान देना चाहा, पर उसने स्पष्ट रूप से मना कर दिया। बोली-'मैंने आपको घुमा दिया तो क्या हुआ? आजकल हमारी गर्मियों की छुट्टियाँ चल रही हैं। मेरे पास कोई विशेष काम नहीं है। वैसे भी तो मैं खाली ही घूम रही थी।'

'यह न समझो कि हम तुम्हें कोई पारिश्रमिक दे रहे हैं, रख लो इसे।' अतिथियों ने आग्रह किया।

सुमन बोली-'कृपया आप इसके लिए अधिक आग्रह न करें। मेरी माँ यह सब देखेंगी तो बहुत नाराज होंगी।

एक महिला सुमन को परखने के लिए कहने लगी-'देखो! इसमें खाने-पीने का कुछ सामान है। यह सब तुम यहीं खा-पी-लो, तब घर चली जाना।

'माफ कीजिए! यह संभव नहीं हो सकता। मैं अपनी माँ से कोई बात नहीं छिपाती। ऐसा करना पाप है।' सुमन कुछ तेजी से बोली।

उस महिला को सुमन की बातें अच्छी लग रही थीं। वे पूछने लगीं-'इसमें क्या पाप है?'

'आप ही बताइए! जब माँ को मेरी सारी बातें ही नहीं पता होंगी, तो वह कैसे मुझे समझाएँगी कि क्या गलत है और क्या सही है। जब वही मुझे सही बात न बताएँगी तो क्या मैं अच्छी बच्ची बन पाऊँगी? मेरी माँ को मुझसे न जाने कितनी आशाएँ हैं। क्या उनकी आशाओं को पूरा न करना पाप नहीं है?' सुमन ने गंभीर होते हुए उत्तर दिया।

वह महिला तुरंत सुमन के पास जाकर उसके कंधे थपथपाने लगी और बोली–'बेटी! मेरी बात का गलत अर्थ न लगाना। मैं तो यों ही पूछ रही थी। माता-पिता की आज्ञा का पालन करना प्रत्येक बच्चे का कर्त्तव्य है। जो वैसा नहीं करते वे उन्नति नहीं कर पाते और अंत में पछताते हैं।'

'मेरी माँ भी ऐसे ही कहती हैं।' सुमन बोली।

फिर उन महिला ने सुमन से कहा–'सुनो! तुमने हमें पूरा राजभवन तो दिखा दिया, पर अपना घर नहीं दिखाया। अब हम तुम्हारी माँ से मिलना चाहते हैं।'

सुमन पहले तो झिझकी, परंतु महिला के बार-बार कहने पर वह उन्हें अपने घर की ओर ले चली।

'माँ! देखो तो तुमसे मिलने कौन आया है?' सुमन ने घर में घुसते ही पुकार लगाई।

'हम राजमहल देखने आए थे और आपकी बिटिया से प्रभावित होकर आप से मिलने यों ही चले आए हैं।' वह महिला आगे बढ़कर बोली।

अब सुमन की माँ का संकोच कुछ कम हुआ। वह आदरपूर्वक अतिथियों को घर के अंदर ले गईं। उन महिला ने एक नजर घर पर डाली। घर छोटा परंतु बड़ा साफ-सुथरा और व्यवस्थित था। घर-गृहणी और परिवार के दूसरे सदस्यों के व्यक्तित्व का परिचय देता है। वह महिला भी मन ही मन सुमन की माँ की प्रशंसा करने लगी।

फिर उन्होंने सुमन की प्रशंसा करते हुए बतलाया कि किस प्रकार उस बालिका ने बड़ी कुशलतापूर्वक उन्हें पूरा राजमहल घुमाया था, उसका परिचय दिया था। उन्होंने कहा कि इस छोटी-सी बालिका में जैसी वाक-चतुरता है, वह किसी-किसी में ही होती है। महिला ने सुमन की माँ से कहा कि यह बालिका प्रतिभाशाली है। यदि इसे विकास का समुचित

अवसर मिले तो यह चमक उठेगी। फिर उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा कि वे बच्चों की एक प्रसिद्ध संस्था की प्रधानाचार्या हैं। उस संस्था में बच्चों को कठिनाई से प्रवेश मिलते हैं, परंतु यदि सुमन की माँ चाहें तो वे उसे वहाँ प्रवेश दे देंगी। यही नहीं, उसके रहने, खाने और पढ़ने की सभी व्यवस्था निःशुल्क कर दी जाएगी।

सुमन की माँ इस प्रस्ताव को सुनकर मौन रहीं। तब उस महिला ने विस्तारपूर्वक समझाया कि उस बच्चों की संस्था में उपयुक्त वातावरण और शिक्षा पाकर बालिका की प्रतिभा पूरी तरह विकसित होगी।

अब सुमन की माँ बोलीं–"बहिन जी! आप बुरा न मानें यह हमारी इकलौती बच्ची है। इसे हम अभी कहीं भेज न पाएँगे। मैं अधिक पढ़ी–लिखी तो नहीं हूँ, पर सदैव यही प्रयास करती हूँ कि बालिका को अच्छे संस्कार दूँ, अच्छी शिक्षा दूँ। इसमें बोलने और लिखने की प्रतिभा दूसरे बच्चों से बहुत अधिक है। उसके विकास के लिए हम प्रयास करते रहते हैं। यही नहीं, ऐसा हमारा प्रयास रहता है। इस बच्ची से घर, आस–पास और स्कूल के सभी व्यक्ति प्रसन्न और संतुष्ट हैं। यह देख–सुनकर हमें भी सुख मिलता है।

महिला कहने लगीं–'बालकों को अच्छे स्कूल का ही नहीं, आप जैसी कुशल माँ का निर्देशन मिलना भी बहुत आवश्यक है।'

सुमन की माँ ने कुछ सोचते हुए कहा–"बहिन जी! अच्छे स्कूल का महत्त्व में न जानती होऊँ, ऐसी बात नहीं है। यहाँ भी बच्चों की कई अच्छी संस्थाएँ हैं। इच्छा थी कि सुमन उनमें पढ़े, परंतु बच्ची की शिक्षा के लिए इतना भी खरच कर पाने की हमारी सामर्थ्य नहीं है। इसलिए हम इस बच्ची को सामान्य से स्कूल में पढ़ा रहे हैं।

महिला बोली–'बहिन! बच्चे किसी परिवार की ही नहीं, समाज की निधि हैं। यही देश के भावी नागरिक हैं, इन्हीं पर समाज और राष्ट्र की प्रगति आश्रित है। बालकों के विकास में योगदान देना परिवार का ही नहीं, पूरे समाज का कर्त्तव्य है। आप अगले महीने ही सुमन को अच्छे विद्यालय में प्रवेश दिला दीजिएगा। इसकी शिक्षा के लिए आपको सौ रुपए प्रतिमास मिल जाया करेंगे। जब तक यह पढ़ती रहेगी, तब तक यह सहायता पाती रहेगी।''

सुमन की माँ को यह सब सुनने की आशा न थी। वह धीमे से बोली–'आप क्यों इतना कष्ट उठाती हैं?

महिला ने कहा–'मेरे पास काफी संपत्ति है। सोचती हूँ कि वह समाज के हित में लगे तो अच्छा है। हर वर्ष मैं कुछ बच्चों की शिक्षा का खरच देती हूँ। इस वर्ष अपनी सुमन को भी उसमें सम्मिलित समझिए।'

सुमन की माँ ने महिला की बहुत प्रशंसा की। कहा–'समाज आप जैसे ऊँचे विचार वाले व्यक्तियों से ही उन्नत होता है और गौरव पाता है अन्यथा अधिकांश व्यक्ति तो अपने संकीर्ण स्वार्थों को पूरा करने में ही जीवन बिता देते हैं। उन्हें दूसरों के लिए कुछ सोचने-करने की फुरसत ही नहीं होती।''

तभी सुमन सबके लिए चाय बनाकर ले आई। बातचीत के बीच से वह कब उठ गई थी, किसी को पता ही न लगा था। उसकी इस व्यवहार कुशलता से अतिथि मन ही मन बड़े ही प्रसन्न हुए। उसके हाथ की अच्छी बनी चाय पीकर तो सबका मन खुश हो गया।

चलते समय अतिथि सुमन को जबरदस्ती कुछ उपहार दे गए। महिला ने सुमन का पता लिख लिया और अपना पता दे दिया। वे जल्दी ही धन भेजने की बात कह गईं।

कुछ दिनों बाद सुमन की माँ को दो सौ रुपए का धनादेश मिला। महिला ने लिखा था कि प्रवेश आदि में अधिक व्यय होगा, इसलिए इस मास अधिक रुपए भेजे जा रहे हैं। उन्होंने अपना दिया वचन पूरा किया था। सुमन की माँ ने भी उसे अच्छे स्कूल में प्रवेश दिलवा दिया।

प्रतिमास निश्चित तारीख पर सुमन के लिए रुपए आ जाते थे। उसकी माँ उन रुपयों को केवल उसकी पढ़ाई में ही खरच करती थीं। यदि कुछ बचता भी था तो सुमन की पासबुक में बैंक में जमा कर देती थीं। आवश्यकता पड़ने पर भी कभी उन्होंने उन रुपयों को अपने परिवार संबंधी खरच के लिए प्रयोग नहीं किया। वे उन्हें धरोहर समझती थीं।

सुमन और उसके माता-पिता उन महिला के लिए आभार व्यक्त करते नहीं थकते। वह भी जब जयपुर आती हैं, तो सुमन से अवश्य मिलती हैं। सुमन का विकास देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है। अच्छा व्यवहार और प्रतिभा दूसरों से सम्मान और सहायता पाते हैं और अपने उज्ज्वल भविष्य का मार्ग सहज सुखद बना लेते हैं। जो अपनी सहायता आप करते हैं तो ईश्वर भी उनकी सहायता करता है।

बुद्धिमती सुरभि

सुरभि अठारह वर्ष की किशोरी थी। वह बहुत समझदार और गंभीर थी। एक बार उसके माता-पिता दोनों ही कुछ दिनों के लिए बाहर चले गए। घर पर वे छोड़ गए सुरभि और उससे दो वर्ष छोटे उसके भाई सौरभ को। उन्हें सुरभि पर पूरा विश्वास था कि वह उनके बिना भी अच्छी तरह से घर संभाल लेगी और दोनों भाई-बहिन ठीक प्रकार से रह लेंगे।

माता-पिता के न रहने पर अब सुरभि को अपना बहुत बड़ा उत्तरदायित्व अनुभव होता था। वही बड़ी थी। घर की सुरक्षा और

ठीक से रहने का उसका अधिक दायित्व था। माँ के सामने तो वह निश्चित रहा करती थी। अब रात में वह उतनी गहरी नींद भी नहीं सो पाती थी। जरा-सा खटका होते ही उसकी आँखें तुरंत ही खुल जाती थीं।

एक रात सुरभि जब सोयी थी उसे आवाज सुनाई दी- 'बचाओ-बचाओ।' स्वर किसी लड़की का था। सुरभि हड़बड़ाकर उठ पड़ी उसने तुरंत सौरभ को झकझोर कर उठाया। तभी फिर पुनः आवाज सुनाई दी। आवाज सड़क की ओर से आ रही थी। सुरभि तुरंत नींद में भरे सौरभ को घसीटते हुए खिड़की के पास ले गई। वहाँ से उसने सड़क पर नीचे टॉर्च की रोशनी डाली। वहाँ का दृश्य स्पष्ट हो उठा। एक युवती रिक्शे के पास खड़ी थी और थर-थर काँप रही थी। उस युवती को तीन चार युवक घेरे खड़े थे। कुछ दूरी पर रिक्शे वाला खड़ा था। पल भर में ही सुरभि समझ गई कि ये सभी बदमाश हैं, जो लड़की को तंग कर रहे हैं। वह सौरभ से फुसफुसाई और कहा कि अभी आते हैं।

टॉर्च की रोशनी अपने ऊपर पड़ते हुए देखकर वे युवक कुछ हड़बड़ा से गए थे। तभी सौरभ जोर से बोला-'ठहरो! हम अभी आते हैं।'

सौरभ की आवाज सुनकर युवक डर गए और वहाँ से भागने लगे। 'कोई उनका डटकर मुकाबला करने वाला है।' यह जानकर ही अपराधियों की आधी हिम्मत समाप्त हो गई थी।

अब सड़क पर वह युवती और रिक्शे वाला ही रह गए थे। युवती बुरी तरह घबरा रही थी और सोच रही थी कि क्या करे, क्या न करे? तभी ऊपर से सुरभि ने कहा-'घबराओ नहीं! रुको हम अभी आते हैं।'

सुरभि और सौरभ नीचे उतरे। सुरभि ने उस लड़की को आदेश-सा देते हुए कहा-'चलो! हमारे साथ चलो।

उसने पास खड़े रिक्शे की ओर इशार करते हुए कहा–'मुझे जाना है।

क्यों! फिर किसी दुर्घटना का शिकार बनोगी क्या? इस समय जाना ठीक नहीं। रिक्शे वाले को पैसे दे दो और चलो मेरे साथ।' सुरभि बुजुर्गों की तरह बोली।

युवती ने चुपचाप सुरभि का आदेश मान लिया। रिक्शे वाले को पैसे देकर वह सुरभि के साथ उसके घर आ गई। अपने आपको सुरक्षित अनुभव करके उसकी जान में जान आई। अभी तक भय से उसके हाथ-पैर काँप रहे थे। सौरभ ने उसे पानी पिलाया और सुरभि तुरंत चाय बना लाई। कुछ देर बाद युवती आश्वस्त-सी दिखी। अभी वह चुपचाप बैठी थी। सुरभि ने ही बात छेड़ी–'अब बतलाइए अपनी बात।'

अब युवती को होश आया कि वह किसी अपरिचित के यहाँ है और उसे अपने घर जाना है। उसने पूरी बात बताई कि वह बाहर से आई है। रेलगाड़ी तीन घंटे देर से आई है। वह स्टेशन से रिक्शा करके घर जा रही थी कि इस चौराहे पर तीन बदमाशों ने आकर रिक्शा रोक लिया। रिक्शे वाले को डाँटकर उन्होंने एक तरफ खड़ा कर दिया और उसे वे रिक्शे से घसीट रहे थे। फिर वह आँखों में कृतज्ञता के आँसू भरकर सुरभि और उसके भाई की ओर देखते हुए बोली–'आज तुम लोगों ने मुझे न जाने कितनी बड़ी भयंकर दुर्घटना से बचा लिया है। तुम्हारा यह उपकार मैं जीवन भर नहीं भूलूँगी।'

सौरभ बोला–'आप भगवान को धन्यवाद दो कि दीदी की उस वक्त आँख खुल गई।

सुरभि कहने लगी–'इतनी रात गए आप आई ही क्यों थीं? स्टेशन पर प्रतीक्षालय में ही क्यों नहीं रुक गईं।'

युवती बोली–'रेल के आने का समय आठ बजे था। मैं आधा घंटे में घर पहुँच जाती, मैंने किसी को स्टेशन पर आने के

लिए भी इसीलिए नहीं लिखा था। सोचा था कि अभी तो ग्यारह ही बजे हैं, घर पर प्रतीक्षा हो रही होगी, घर से स्टेशन बहुत दूर नहीं है। क्या पता था कि रास्ते में ही यह दुर्घटना हो जाएगी।

जाड़ों की रात में ग्यारह बजे ही आधी रात और सन्नाटा हो जाता है। सुरभि ने कहा। फिर वह कुछ सोचते हुए सी बोली– 'अपनी सुरक्षा स्वयं कर सकें, यह बात हर समय सोचकर चलनी चाहिए। समाज में हर प्रकार के व्यक्ति हैं। कुछ तो औरों की सहायता के लिए हर समय तैयार रहते हैं, परंतु ऐसे मनुष्यों की भी कमी नहीं जो दूसरों को संकट में फँसे देखकर भी आँख-कान बंद करके पीठ फिरा लेते हैं।

युवती ने सुरभि की बात का समर्थन किया। उसे कुछ परेशान-सा पाकर सुरभि ने कारण पूछा। वह कहने लगी–''मैं घर जाना चाह रही हूँ। वहाँ मेरी प्रतीक्षा हो रही होगी। तुम भैया को मेरे साथ भेज दो।'

सुरभि ने एक पल विचार किया और बोली–'इस समय रात के बारह बजे हैं। किसी संकट में फँसने पर वह अकेला बच्चा क्या कर लेगा? हो सकता है कि बदमाश कहीं पास ही में छिपे हों और निकलते ही हमला कर दें। अच्छा यही है कि आज रात यहीं रुकिए और कल दिन निकलते ही चली जाइए। यहाँ आपको कोई असुविधा नहीं होगी। हमें अपने छोटे भाई-बहिन समझिए।

तुम तो सदा के लिए मेरे भाई-बहिन हो। तुम बुद्धिमान हो, जैसा तुम कहोगी, मैं करूँगी।' युवती ने कहा।

कुछ देर तक तीनों बातचीत करते रहे। युवती ने उन्हें अपना परिचय दिया। थोड़ी ही देर में तीनों ऐसे घुलमिल गए जैसे वर्षों से एक-दूसरे से परिचित हैं। सुरभि ने बात समाप्त की–'अच्छा दीदी! अब सो जाइए। आप थकी हैं और कल जल्दी जाना भी है।

दूसरे दिन चाय नाश्ता कराके उन्होंने उस युवती को विदा किया। वह फिर आते रहने और मिलते रहने की बात कह कर चली गई।

उसी दिन सुरभि के माता-पिता भी लौट आए। बच्चों की बुद्धिमानी की बात सुनकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए। सुरभि की माँ बोली-'दूसरों की सहायता करने में ही बड़प्पन है। अपने लिए और अपने स्वार्थ के लिए तो सभी जीते हैं। उसमें फिर भला क्या और विशेषता है?

सुरभि और सौरभ हँसते हुए बोले-'माँ! तुम्हारी शिक्षाएँ हमें सदा याद रहती हैं। वह युवती प्रायः सुरभि के घर आती है। सुरभि और सौरभ को वह छोटे भाई-बहिन की तरह मानती है। सौरभ के वह रक्षा-बंधन पर राखी भी बाँधती है। उसके माता-पिता का भी वह बहुत आदर करती है। उसके परिवार की वह सदस्या जैसी ही बन गई है। हो भी क्यों नहीं, जो संकट से उबारे और मार्ग भटकने पर आत्मीयत से सही मार्ग का बोध करा दे और हमारे आत्म-सम्मान को सुरक्षित कर आत्म-विश्वास जगा दे, वही तो वास्तव में अपना सच्चा बंधु और आत्मीय है।

प्रयत्न की पूर्णता

जगन मास्टर साहब खेरागढ़ गाँव में कुछ ही दिन पहले आए थे। वे सरकारी स्कूल में पढ़ाते थे। शिक्षा की दृष्टि से खेरागढ़ बहुत पिछड़ा हुआ था। स्कूल में थोड़े से बच्चे पढ़ने आते थे। अधिकांश माता-पिता तो बच्चों को खेत के काम में ही जुटाए रखते।

पर मास्टर साहब हार मानने वाले न थे। वे उन शिक्षकों में से न थे जो केवल जीविकोपार्जन के लिए इस व्यवसाय में आते हैं। उनमें तो शिक्षक के गुण, उसकी गरिमा कूट-कूट कर भरी थी।

जब भी जहाँ भी अवसर मिलता तो वे बच्चों के माता-पिता को शिक्षा के महत्त्व, उसकी आवश्यकता के विषय में समझाना न भूलते। उनकी हार्दिक कामना थी कि पूरा का पूरा खेरागढ़ साक्षर हो जाए। अधिक नहीं तो कम से कम पत्र-समाचार पत्र आदि तो हर व्यक्ति अपने आप लिख पढ़ ले। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने रात के समय में प्रौढ़ पाठशाला प्रारंभ कर दी। किसानों का यह समय खाली होता था और वे गपशप करके उसे बरबाद किया करते थे। मास्टर साहब के बहुत कहने से ८-१० किसान पढ़ने आने लगे थे, परंतु धीरे-धीरे उनकी संख्या कम होती जा रही थी। पता लगा कि भोलू उन सबको बहकाकर पढ़ाई से विरत कर रहा था। भोलू कहता था-'भाइयो! पढ़-लिखकर क्या करोगे? तुम्हें नौकरी थोड़े ही करनी है। खेती करने वाले हम किसानों के लिए पढ़ाई-लिखाई की कोई जरूरत नहीं। सारे दिन की मेहनत के बाद जो कुछ भी थोड़ा समय मिल जाता है, वह गप-शप करने के लिए है,न कि सिर खपाने के लिए।

अच्छी बात का असर देर से होता है और कम समय रहता है, परंतु गलत बात, गलत तर्क बड़ी जल्दी ही प्रभावित कर लेते हैं। भोलू की बात का किसानों पर प्रभाव पड़ा और उन्होंने स्कूल आना ही छोड़ दिया। वे पहले की भाँति ही सब चौपाल में इकट्ठे होकर गपशप करते।

इसी बीच मास्टर साहब को कुछ समय के लिए गाँव से बाहर जाना पड़ा था। अब तो लौटकर ही इन्हें समझाऊँगा। उन्होंने मन ही मन सोचा।

एक दिन भोलू के यहाँ तार आया। उसका छोटा भाई शहर में रहता था। उसी ने यह भेजा था। भोलू स्वयं तो पढ़ा हुआ था नहीं। वह उस व्यक्ति को खोजने लगा जो उसे तार पढ़कर सुना सके। परंतु पूरे गाँव में भटकने पर भी भोलू को अपने उस

उद्देश्य में सफलता न मिल सकी। गाँव के जो थोड़े पढ़े हुए नवयुवक थे वे एक दंगल में भाग लेने शहर गए हुए थे। भोलू मन मसोसकर रह गया। उसका मन बहुत सी आशंकाओं से घिर गया। आखिर उससे रहा न गया और वह दूसरे दिन सुबह ही भाई के पास जाने के लिए निकल पड़ा। चार घंटे सफर करके जब वह शहर में पहुँचा तो वहाँ बड़ा सा ताला लटका पाया। अब उसका दिल जोरों से धड़कने लगा। जैसे-तैसे उसने मकान मालिक के पास जाकर भाई के विषय में पूछा। उन्होंने बताया कि उसे अचानक ही कॉलिज की ओर से किसी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए मद्रास जाना पड़ा है। १५-२० दिन में वह लौटकर आ जाएगा।

पूरी बात जानकर भोलू ने चैन की साँस ली। पिछले दिन से उसने कुछ खाया न था। तरह-तरह की बुरी-बुरी आशंकाओं ने उसे पिछले चौबीस घंटों में बहुत ही संत्रस्त कर दिया था। इस समय वह स्वयं को बहुत ही थका हुआ अनुभव कर रहा था। वह सीधे गाँव लौट गया। रास्ते भर वह सोचता रहा-'मास्टर साहब ठीक ही कहते हैं। थोड़ी बहुत पढ़ाई-लिखाई तो सभी के लिए बहुत जरूरी है। यदि मैं तार पढ़ पाता तो क्यों अकारण इतना मानसिक क्लेश सहता? क्यों अपना धन और समय बरबाद करता?'

मास्टर साहब जब गाँव पहुँचे तो उन्होंने पाया कि भोलू भी नियमित रूप से उनकी प्रौढ़ पाठशाला में आने लगा है। यही नहीं वह अपने साथियों को भी पढ़ने के लिए साथ लाने लगा है। मास्टर साहब तो चाहते ही यही थे। उन्होंने भोलू को अधिक से अधिक साथियों को साक्षर बनाने के लिए प्रोत्साहित किया।

धीरे-धीरे गाँव के बहुत से किसान साक्षर बन गए। उन्होंने इसका उपयोग खेती के लिए भी किया। वे कृषि से संबंधित

पुस्तकें, पत्रिकाएँ आदि पढ़कर विविध जानकारियाँ लेने लगे और उनसे लाभ उठाने लगे। उनकी खेती भी पहले से अच्छी होने लगी।

अब वे कभी पिछली स्थिति के बारे में सोचते हैं, तो उन्हें अपने ऊपर ही हँसी आती है कि पहले उनकी दुनिया, उनका ज्ञान कितना सीमित था, कुएँ में मेंढ़क जैसा। अब तो वे उस स्थिति की कल्पना भी नहीं कर पाते। देश-विदेश के विविध समाचार जानने के लिए अखबार पढ़े बिना उन्हें चैन ही नहीं पड़ता।

जगन मास्टर साहब गाँव की इस प्रगति से फूले नहीं समाते। सच है-'लोक मंगल के लिए सच्चे मन से निरंतर किया गया प्रयत्न अवश्य सफल होता है। 

सजग माता

प्रवीण को वह पुस्तक बहुत अच्छी लगी थी,जो कॉलिज के पुस्तकालय से उसे एक सप्ताह के लिए मिली थी। प्रवीण ने उसे दो-तीन बार पढ़ा, परंतु उसका मन न भरा। पुस्तक के कुछ अंश वास्तव में संग्रहणीय थे। उसने उन्हें उतारना प्रारंभ किया, परंतु जल्दी ही प्रवीण ऊब गया। वह चंचल स्वभाव का था और किसी एक कार्य में अधिक देर तक मन लगाना उसके लिए सरल नहीं पड़ता था।

सप्ताह भर बाद प्रवीण ने पुस्तक वापिस कर दी। उसने बाजार में उसे बहुत खोजा, परंतु वहाँ न मिली। वह जब भी पुस्तकालय जाता तो शीशे की अलमारी में रखी हुई पुस्तक सहसा ही उसके मन को ललचा देती।

उस दिन मूसलाधार वर्षा के कारण विद्यालय का अवकाश घोषित हो गया था। पुस्तकालय में दो-तीन छात्र थे। प्रवीण पुस्तकालय में घूमते हुए उसी अलमारी के पास जाकर खड़ा हो गया और उसने

चारों ओर दृष्टि डालकर देखा। बादलों के कारण कमरे में अँधेरा-सा छाया था और आसपास कोई भी न था। सहसा ही उसके हाथ पुस्तक तक पहुँच गए। जिन पृष्ठों पर उसने चिह्न लगाए थे उन्हें वह एक-एक करके फाड़ने लगा। इस प्रकार प्रवीण ने आठ-दस पृष्ठ फाड़ लिए, फिर उन्हें मोड़कर नेकर में छिपा लिया। वह चोर जैसी निगाहों से इधर-उधर देखता हुआ पुस्तकालय भवन से बाहर निकल आया।

पुस्तक फाड़ते हुए तो प्रवीण का कलेजा धड़क रहा था, परंतु घर आते-आते उसका सारा डर दूर हो चुका था। उलटे वह अपनी बुद्धिमानी पर प्रसन्न हो रहा था कि बिना परिश्रम के ही उसका काम बन गया। प्रवीण ने घर आकर उन कागजों को अपनी पुस्तकों के बीच में छिपाकर रख दिया। जब भी उसकी इच्छा होती वह निकाल कर पढ़ लेता।

सप्ताह भर बाद की बात है। प्रवीण खेलकर लौटा ही था कि माँ उसके पास आई। उनके हाथ में वे फटे हुए कागज थे। यह कहाँ से आए? वे पूछ रही थीं। प्रवीण एक पल को सहम गया। वह जानता था कि माँ बहुत सख्त नाराज होंगी। वह झूठ बोल गया-'अजय के यहाँ एक पुस्तक पड़ी थी, उससे फाड़े हैं।'

माँ का चेहरा कठोर हो गया। वे उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए बोली-'चोरी तो की है, अब झूठ भी बोलेगा?'

'नहीं! ऐसा तो नहीं है।' प्रवीण कुछ हकलाते हुए कहने लगा, पर वह समझ गया था कि उसकी बुद्धिमती माँ ने चोरी पकड़ ली है।

तभी उसे माँ का गंभीर और कठोर स्वर सुनाई दिया-'कॉलिज की पुस्तक से फाड़े हैं न?

सच्चाई सामने आने पर प्रवीण न नहीं कह सका। माँ द्वारा बार-बार पूछे जाने पर उसने पूरी बात बता दी। उस दिन प्रवीण से माँ बिलकुल नहीं बोलीं। न उसे शाम का नाश्ता

मिला और न खाना। उसका भी साहस न हुआ कि वह माँ के पास जाकर खाना माँगे। भूख के कारण रात में वह ठीक से सो भी न पाया।

सुबह नाश्ते की मेज पर पूरे परिवार के सामने माँ ने कहा– 'प्रवीण! तुम्हें अपने इस कार्य के लिए पुस्तकालय अध्यक्ष से जाकर क्षमा माँगनी होगी। पुस्तक का मूल्य भी पता करके आना और कल उन्हें उसका मूल्य भी देकर आना।'

माँ की बात सुनकर प्रवीण सकपका गया। इसका मतलब यह था कि उसकी चोरी की पोल सबके सामने खुल जाएगी। वह बहुत गिड़गिड़ाया, पर माँ ने उसकी एक न सुनी और साफ-साफ शब्दों में कह दिया–'पाप किया है तो प्रायश्चित करने से क्यों डरते हो? गलत काम करते समय तुमने कुछ नहीं सोचा?'

प्रवीण जानता था कि नैतिक शिक्षा और सदाचार के विषय में उसकी माँ बड़ी कठोर हैं। यदि वह पुस्तकालय अध्यक्ष के पास न जाएगा तो वे स्वयं ही पहुँच जाएँगी। लाचार होकर उसे दूसरे दिन उनके पास जाना ही पड़ा। उन्हें अकेला देखकर प्रवीण उनके पास जाकर सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा हो गया। 'क्या बात है बच्चे?' उन्होंने पूछा तो उसने माँ का पत्र निकाल कर धीरे से उनके सामने रख दिया।

पत्र पढ़कर उन्होंने सिर से पैर तक उसे देखा। प्रवीण मन ही मन डर रहा था कि उसे डाँटेंगे, पर हुआ उसका उलटा ही। उन्होंने उसे प्यार से समझाया कि इस प्रकार पुस्तकों के पृष्ठ फाड़ लेना बहुत ही अनुचित कार्य है। इससे अनेक विद्यार्थी उस ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। जिन पृष्ठों की प्रवीण को आवश्यकता है उनकी अन्यों को भी होगी। अब प्रवीण को अपनी गलती पूरी तरह से समझ में आ गई थी। उसने हाथ जोड़कर माँफी माँगते हुए कहा–'मैं जीवन में ऐसी गलती दुबारा फिर कभी नहीं करूँगा।'

पुस्तकालय अध्यक्ष ने एक पत्र उसकी माँ को लिखा। जिसमें उन्होंने बच्चे को सजग बनाने में एवं उसमें अच्छे गुण डालने के लिए उनकी प्रशंसा की थी। साथ ही पुस्तक का मूल्य न भेजने की बात लिखी थी।

उस दिन घर जाकर प्रवीण से खाना भी न खाया गया। बात खुलने से उसका मन बड़ा ही क्षुब्ध था, परंतु माँ का व्यवहार कल जैसा रूखा और कठोर न था। आज उसे प्यार से समझाते हुए कह रही थीं–'बेटे! मैं जानती हूँ कि तुम क्या सोच रहे हो? तुम्हारी गलती अनेकों को पता लग गई है। इसलिए तुम्हारा मन परेशान है–यह स्वाभाविक भी है, परंतु इतनी लज्जा, इतनी झिझक उस समय होनी चाहिए जिस समय गलती करने के लिए कदम उठें। गलती करना बुरा है, न कि उसकी आत्म स्वीकृति। गलत किए का परिष्कार करने से तो व्यक्ति का विकास ही होता है और वह निरंतर अच्छाई के रास्ते पर बढ़ता है। सभी बड़े व्यक्ति इस बात को समझते हैं। इसलिए गलती का परिष्कार करते हुए दुखी न बनो। अपितु संतोष की अनुभूति करो कि तुम गलत रास्ते पर जाने से बच गए। छोटी–छोटी गलती ही एक दिन बड़ा अपराधी बना देती है।

माँ ने प्रवीण को एक पत्र और रुपए दिए तथा पुस्तकालय अध्यक्ष को देने के लिए कहा। पत्र में उन्होंने लिखा था–'आपने विद्यार्थी के गलती करने पर जो सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया है वह निश्चित ही आपके उदार व्यक्तित्व का परिचय देता है। वास्तव में अवसर के अनुसार बच्चों के साथ कहीं कठोरता तो कहीं कोमलता आवश्यक हुआ करती है। मेरे विषय में आपने जो लिखा है, वैसी महान तो मैं नहीं हूँ कि समाज और राष्ट्र को एक योग्य नागरिक दे पाऊँ। मेरी यही कामना है कि हर माता अपनी संतान के निर्माण में सजग और तत्पर रहे, जिससे हमारे राष्ट्र और समाज को चरित्रवान नागरिक मिलें जो इन्हें गौरवान्वित करें। 

समीर की चतुराई

समीर का ग्रीष्मावकाश था। इन दिनों वह अपने पिता के काम में अधिक से अधिक हाथ बँटाता था। उसके पिता सर्राफे का काम किया करते थे। समीर ने किशोर आयु में ही उनसे बहुत–सा काम सीख–समझ लिया था।

उस दिन समीर के पिता कुछ अस्वस्थ से थे। गरमी भी पूरी भयंकरता से पड़ रही थी। समीर ने उन्हें आग्रह करके घर पर ही रोक दिया और स्वयं जाकर दुकान खोल ली। वह सारे दिन कारीगरों की सहायता से दुकान चलाता रहा। शाम के समय जब मौसम कुछ ठंडा हुआ तो उसके पिता दुकान पर आकर बैठे।

दिन ढल चुका था। बाजार में खूब भीड़–भाड़ थी। तभी तीन व्यक्ति समीर के पिता के पास आए। उन्होंने झोले में से एक चमचमाता हुआ सोने का आकर्षक हार निकाला और गिड़गिड़ाते हुए बोले–'सेठ जी! हम बड़ी मुसीबत में फँस गए हैं। हमारी कुछ सहायता कीजिए।'

सेठजी कुछ पूछ पाते, उससे पहले ही एक व्यक्ति हाँफता हुआ कहने लगा–'हम ग्वालियर से यहाँ घूमने आए थे। अचानक ही दोपहर को यहाँ मेरी पत्नी बस से टकरा गई। अब वह मरणासन्न स्थिति में अस्पताल में भरती है। आप तो जानते ही हैं कि बिना रुपयों के इलाज नहीं हो सकता। हम ठहरे परदेशी। इतने रुपए लेकर तो आए नहीं हैं। आप जल्दी से यह हार रखिए और जितने रुपए बनते हों हमें दे दीजिए। हम आपके बड़े आभारी रहेंगे, साथ शेष दोनों व्यक्ति इसी बात का समर्थन करते हुए अनुनय–विनय करने लगे।

सेठजी उनकी बातें सुनकर दया से भरे उठे। साथ ही हार की सुंदर बनावट ने भी उनके मन को ललचा दिया था। वे उसे हाथ में लेकर बारीकी से उसकी जाँच करने लगे।

तभी सहसा समीर के मन में कुछ विचार कौंधे। उसे लगा कि इनमें से एक व्यक्ति को उसने कहीं देखा है। थोड़ा ध्यान देने पर उसे अच्छी तरह याद आ गया कि चार-पाँच दिन पहले ही इस व्यक्ति को उसने अपने घनिष्ठ मित्र पवन के घर के आसपास संदिग्ध स्थिति में घूमते हुए देखा था। उन्होंने आपस में कहा भी था कि यह कोई चोर-उचक्का सा लगता है। वे उसका पीछा करना चाह रहे थे कि सहसा ही वह उनकी आँखों से ओझल हो गया था। समीर ने मन ही मन तुरंत निर्णय ले डाला। उसने पिता को आँखों ही आँखों में इशारे से कुछ समझाया। फिर वह कहने लगा-'मैं आपके लिए कुछ ठंडा लेने जाता हूँ।'

समीर तेज-तेज कदमों से चलकर पास की पुलिस चौकी पहुँचा। वहाँ उसके परिचित दरोगा बैठे थे, जो उसके साहस भरे कामों के प्रशंसक थे। वे हँसकर समीर से बोले-'कहो बहादुर! कैसे आना हुआ।'

समीर ने जल्दी से उन्हें अपना संदेह बताया कि संभवतः कोई चोरी का माल उनकी दुकान पर बेचने आया है। दरोगा जी दो सहायकों को साथ लेकर तुरंत ही समीर के साथ हो लिए। वे सभी सादे वस्त्रों में थे। समीर उन सभी के लिए ठंडी बोतलें साथ ले गया था। वे आराम से ठंडा पेय पीने लगे। दरोगा तो उन्हें देखते ही पहचान गए। वे पास के नगर के नामी ठग थे। जेब काटने, आभूषण काटने के कारण वे अनेक बार गिरफ्तार हो चुके थे। आजकल इस शहर में ऐसी घटनाएँ तेजी से घट रही थीं और पुलिस को उनकी तलाश थी।

इसी बीच सेठजी का उन व्यक्तियों से आठ हजार रुपए में सौदा पट चुका था। वे उनसे जल्दी रुपए देने का आग्रह करने लगे। तभी दरोगा जी ने सेठजी के सामने पड़ा हुआ हार उठाते हुए

कहा–'वाह यह तो बहुत सुंदर है। आप कहें तो इसे हम ही ले लें। पत्नी इसे देखते ही खुशी से झूम उठेगी।'

'जरूर-जरूर! आप ही लीजिए इसे। हमें तो वैसे भी इसको बेचना ही है।' सेठजी दरोगा जी की ओर देखते हुए बोले।

दरोगाजी ने सादे कपड़ों में बैठे अपने सहकर्मियों से कहा–'जाओ तुम इन्हें हमारे घर से रुपए दिलवा दो।' तीनों व्यक्ति उठ खड़े हुए। कुछ देर बाद दरोगाजी तथा समीर भी उनके पीछे चल पड़े। थाने के पास आकर लुटेरों ने भागने की कोशिश की, परंतु साथ चल रहे पुलिस वालों और पीछे से आ रहे दरोगाजी और समीर ने उन्हें कसकर पकड़ लिया। शोर सुनकर आसपास की भीड़ भी वहाँ एकत्रित हो गई। सभी उन्हें धकेलते हुए थाने की ओर ले चले।

पहले तो वे यही कहते रहे कि यह हार उनका ही है। जब दरोगाजी ने पूछा कि उनकी पत्नी किस अस्पताल में है? उसका नाम क्या है? तो वे सकपका गए। दरोगाजी ने उनसे जल्दी ही यह स्वीकार करा लिया कि यह हार उन्होंने किसी महिला की गरदन से काटकर चुराया है। बस फिर क्या था, तीनों को अंदर बंद कर दिया गया।

दरोगा जी तथा उपस्थित भीड़ ने समीर की बुद्धिमानी की बहुत प्रशंसा की। उन्होंने अपनी ओर से समीर को पुरस्कार दिया और नागरिकों से कहा–'लुटेरों के पकड़े जाने से आप सभी राहत का अनुभव करेंगे।'

नगर में सचमुच ही लूटपाट की घटनाएँ कम हो गई थीं। अगले सप्ताह नागरिकों ने भी एक समारोह आयोजित किया और उसमें समीर का अभिनंदन किया।

कोई भी हमें तभी ठग सकता है, जब हम लालच में फँस जाते हैं। यदि ऐसे अवसर पर हम थोड़े विवेक और सावधानी से

काम लें तो बड़ी से बड़ी दुर्घटना भी टल जाती है और समाज को बुराई तथा दुष्ट स्वभाव वालों से बचाया जा सकता है। इसलिए आवश्यक है कि हम विशेष परिस्थिति में सावधानी से अपनी शंका की जाँच करें। समय के अनुसार उपाय कर आने वाले कष्ट से भी बच जाएँ और दुष्ट व्यक्ति को दुष्कर्म का उचित परिणाम मिलने पर उसे भी सही रास्ते पर लाने में समर्थ हों।

कुसंग का फल

सोमांक के पिताजी प्रायः बाहर रहा करते थे। उनकी नौकरी में जल्दी-जल्दी स्थानांतरण होता रहता था। बच्चों की शिक्षा अच्छी प्रकार से चल सके, इसके लिए उन्होंने अपनी पत्नी और बच्चों को एक स्थान पर ही बसा दिया था। सोमांक की माँ भी नौकरी करने लगी थीं। वह बहुत व्यस्त रहतीं। घर-बच्चे और स्कूल-तीनों की जिम्मेदारी उन पर थी जिसका वे बड़ी कुशलता से निर्वाह करतीं। वे चाहती थीं कि उनके बच्चे भी उन्हीं की भाँति परिश्रमी बनें। यही कारण था कि बच्चों को सारी सुविधाएँ देते हुए भी वे उन्हें काम में लगाए रखतीं। बच्चों में सोमांक सबसे बड़ा था, हाईस्कूल में पढ़ने वाला पंद्रह वर्ष का किशोर-अतएव बाजार से सामान लाने का कार्य उसे सौंपा गया। सोमांक की माँ कुशल गृहिणी थीं। महीने भर के लिए राशन-गेहूँ, दाल, मसाले आदि तो वे एक साथ ही खरीद लेती थीं। अब रह जाती थी छोटी-मोटी वस्तुएँ सब्जी-फल आदि। सोमांक ने जब से यह सब लाना प्रारंभ किया था, उन्होंने राहत अनुभव की थी।

सोमांक की माँ बच्चों को जेब खरच के लिए कम पैसे देती थीं। बच्चे धन का अपव्यय करें या बाजार की चीजें खाएँ, यह उन्हें पसंद न था। वे पाक कला में निपुण थीं। बच्चों की माँग के अनुसार स्वास्थ्यप्रद वस्तुएँ वे प्रायः घर पर ही बनाती रहती थीं, पर सोमांक को अपने दोस्तों के साथ रहकर पैसों का अपव्यय करने की आदत पड़ गई थी। सिनेमा

का शौक भी उसने पाल लिया था, परंतु उसका जेब खरच बहुत कम था, इसलिए उसे मन मसोसकर रह जाना पड़ता था। दोस्त भी आखिर कब तक खरच करते? वे उसे तरह-तरह से ताने देते। सोमांक के एक मित्र ने उसे पैसे पाने का एक उपाय सुझाया-'तुम घर की चीजें तोल में थोड़ी-थोड़ी कम लाया करो। इससे तुम्हारी माँ को पता भी न लगेगा और तुम्हारे पास पैसे भी बच जाएँगे?'

सोमांक का मन न हुआ कि वह अपनी सीधी-सरल माँ को यों धोखा दे। पर दोस्तों के फुसलाने पर वह बहक गया। वे सब भी ऐसी ही तरकीब काम में लाते थे। प्रारंभ में ऐसा करने पर सोमांक झिझका, पर चार-छः बार करने पर वह अभ्यस्त हो गया। कोई भी गलत काम जब आरंभ किया जाता है तो मन रोकता है, पर उसकी उपेक्षा करके जब व्यक्ति गलती करने पर ही तुल जाता है तो अंतःचेतना भी मूक हो जाती है।

सोमांक की माँ प्रायः निर्धारित दुकानों से ही वस्तुएँ मँगातीं। वे कहती थीं कि ऐसा करने से दुकानदार अच्छी तरह परिचित हो जाता है और अच्छा सामान देता है। सोमांक जिस दुकान से सब्जी लाता था, उसका मालिक उसे अच्छी तरह जानता था और अच्छी चीजें देता था। सोमांक उससे कोई सब्जी ४५० ग्राम तौलने के लिए कहता तो कोई ९०० ग्राम। एक-दो दिन उसने टोका तो सोमांक ने पैसे कम पड़ने का बहाना बना दिया, पर दुकानदार की अनुभवी आँखों से यह छिपा न रह सका कि दाल में कुछ काला है। वह नहीं चाहता था कि भले घर का बच्चा यों बिगड़े, पर वह उससे इस ढंग से बात करना चाहता था कि उसे बुरा न लगे। अगले दिन जब सोमांक आया तो उसके कम तौलने के आदेश के बाद भी दुकानदार ने पूरी सब्जी और फल ही तौले और कहा-'मुन्ने! कोई बात नहीं, बचे हुए पैसे कल दे देना। सोमांक को मन ही मन दुकानदार पर बड़ा गुस्सा आया, वह वहाँ से तो चला आया, पर रास्ते में बुदबुदाता

हुआ बोला–'बच्चू! बड़ा उपकार दिखा रहा है। जब पैसे नहीं मिलेंगे तो पता लग जाएगा।

सोमांक ने दूसरे दिन उधर मुँह भी नहीं किया। अब वह दूसरे नए-नए दुकानदारों से कम तुलवाकर सामान खरीदता। सोमांक ५० ग्राम कम तौलने को कहता तो वे ७५ ग्राम कम तौलते। जल्दी में दी गई वस्तुओं में कुछ पता न लगता। वे चीजें मँहगी भी देते और कुछ अच्छी भी न देते। दुकानदार का दुगुना फायदा होता। अतएव उन्हें भला सोमांक की बात मानने में क्या आपत्ति थी। जो थोड़े-बहुत पैसे इस प्रकार बचते, उन्हें दोस्तों के साथ खरच करके वह अपनी शान समझता। अब वह अपने आप को मित्र मंडली में नीचा न समझता।

सोमांक की माँ कई दिनों से देख रही थीं कि सामान अच्छा नहीं आता। वे उससे कहतीं तो कभी वह दुकान पर भीड़ होने की बात बना देता, कभी गरमी के कारण फल और सब्जी सूखने की बात कहता तो कभी दूसरा कोई बहाना बना देता।

माँ ने सोमांक से तो कुछ न कहा, पर मन ही मन सोच लिया कि वह दुकानदार के पास जाएगी और उससे अच्छा सामान देने की बात कहेंगी। एक दिन स्कूल से लौटते समय ही वह बाजार की ओर मुड़ गईं। उन्हें देखते ही दुकानदार स्वागत करते हुए तुरंत बोला–'आइए बहिन जी! आपने तो इधर आना बिलकुल ही छोड़ दिया है।'

'सोमांक तो रोज आता है।' वे बोलीं।

अब दुकानदार ने बताया कि वह तो महीने भर से इधर आया ही नहीं। साथ ही दुकानदार ने सोमांक के कम तौलने का आदेश देने की बात भी कह दी। यह सब सुनकर उनका चिंतित होना स्वाभाविक था। वे बोलीं–'ठीक है, मैं आज ही सोमांक से जाकर पूछती हूँ।

माँ का मन रास्ते भर क्षुब्ध होता रहा। अपनी ओर से वे बच्चे को जितनी सुविधाएँ दे सकती थीं, दे रही थीं। अच्छी शिक्षा और संस्कार भी दे रही थीं, पर सोमांक यों गलत रास्ते पर चला जाएगा, यह उन्होंने सोचा भी नहीं था। उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि सोमांक को डाँट से नहीं, प्यार से ही समझाना होगा। भावावेश में तो कुछ न होगा। उसे तो बुद्धिमानी से ही सही मार्ग पर लाना होगा।

माँ और बच्चे खा-पीकर शाम के समय जब गपशप करने बैठे तो माँ ने सोमांक से फिर कहा कि वह आजकल अच्छा सामान नहीं ला रहा है। सोमांक ने पहले की भाँति ही दुकानदार पर दोषारोपण कर दिया। जब माँ ने अपना निर्णय सुना दिया-'कल से मैं स्कूल से लौटते समय बाजार से सामान लेकर लौटा करूँगी और सोमांक बेटे! तुम सौम्या के साथ मिलकर रसोईघर में सारा काम कराया करोगे।'

सोमांक ने माँ से बहुत अनुनय-विनय की अब वह बाजार से अच्छी चीजें लाएगा, पर उन्होंने उसकी एक न सुनी। वह जानता था कि माँ की बात अमिट होती है। वह यह भी जानता था कि उसे रसोई में भी काम करना ही पड़ेगा। उसने प्रारंभ में वहाँ एक-दो बार काम करने का विरोध किया था, अपने लड़का होने की दुहाई दी थी, तो माँ ने मीठी झाड़ दिलाई थी -'लड़के हो तो क्या हुआ? जब सब खाते हैं तो मिलकर काम करने में कैसी लज्जा? लड़की हो या लड़का, उसे इतना स्वनिर्भर तो होना ही चाहिए कि अकेला रहकर भी अपना ठीक से निर्वाह कर सके। फिर लड़की और लड़के में अंतर ही क्या है? दोनों का ही माता-पिता समान रूप से पालन-पोषण करते हैं, योग्य बनाते हैं।

सोमांक के मित्र उसके रसोईघर में काम करने की बात को लेकर कभी-कभी उसे चिढ़ा भी दिया करते थे, पर उसके घर में माँ का शासन चलता था न कि दोस्तों का, पर जब कभी वह मित्रों के साथ पिकनिक पर जाता था या स्काउट कैंप में जाता तो उसे

अपनी इस योग्यता पर गर्व होता। सभी उससे पूछ-पूछकर खाना बनाते, उसके बनाए भोजन की प्रशंसा करते।

यद्यपि माँ ने सोमांक से सब्जी वाली घटना के विषय में कुछ न कहा था, परंतु वे उस पर बराबर निगाह रखे हुए थीं। वह देख रही थीं कि सोमांक घर के काम में टालमटोल करता, छोटे भाई-बहिनों के साथ डाँट-डपट करता है और घर से बाहर अधिक समय बिताने लगा है। उन्हें सोमांक के रंग-ढंग देखकर शंका हो रही थी। तभी एक दिन उनके एक परिचित ने सूचना दी कि उन्होंने सोमांक को स्कूल के समय में दोस्तों के साथ सिनेमा में देखा था। दूसरे ही दिन उनकी एक सहेली ने, जो अपने परिवार के साथ पिकनिक पर गई थीं सोमांक की माँ को सूचित किया कि उनका बेटा स्कूल के समय में पिकनिक मना रहा था। 'मेरी शंका ठीक ही निकली।' सोमांक की माँ मन ही मन बुदबुदाई। फिर वह अपनी उस सहेली के बेटे आशुतोष से बात करने उसके घर गईं। आशुतोष प्रतिभाशाली और सुशील बालक था, वह उनके बेटे की ही कक्षा में पढ़ता था। उनका ध्यान गया कि कई महीने से वह उनके घर भी नहीं आया है।

आशुतोष ने झिझकते हुए सोमांक की माँ को सारी सूचनाएँ दे दीं कि वह ऐसे लड़कों के साथ रहने लगा है जो प्रायः कक्षाएँ छोड़कर चले जाते हैं। पढ़ाई-लिखाई से दूर भागते हैं, स्कूल में नेतागीरी करते हैं, पैसे बिगाड़ते हैं। आशुतोष ने यह भी बताया कि उसने तीन बार सोमांक को उन लड़कों के साथ रहने और गलत काम करने से रोक तो सोमांक ने उसे भला-बुरा कहा और दोस्तों से पिटवाया भी। माँ ने आशुतोष की इन जानकारियों के लिए धन्यवाद दिया और अनुरोध किया कि वह सोमांक पर बराबर निगाह रखे। इसके लिए वे स्वयं आकर सोमांक के विषय में पता करती रहेंगी।

अब माँ के पास सोमांक से बात करने के लिए पर्याप्त प्रमाण थे। वे उससे बातचीत करने का अवसर खोजने लगीं। एक दिन खाना खाते समय जिद करने लगे कि रविवार को झील के किनारे पिकनिक पर चला जाए। माँ हँसकर बोली–'सोमांक तो जाएगा। नहीं। वह तो वहाँ अकेले ही पिकनिक मना आया है।'

'नहीं माँ! मैं तो नहीं गया था।' सोमांक साफ झूठ बोल गया।

छोटे बच्चों के सामने तो माँ ने कुछ न कहा, पर जब वे खेलने चले गए तो उन्होंने फिर सोमांक से कहा–'बेटे! तुम्हें पिकनिक ही मनानी थी, तो हमसे कहा होता। छोटे भाई–बहिनों को भी साथ ले जाते।'

'माँ! तुम्हें गलतफहमी हुई है, मैं तो कभी नहीं गया।' सोमांक फिर कहने लगा।

अब माँ ने गंभीर होकर कहा–'सोमांक! तुम कुछ गलत बच्चों के साथ रहकर गलत आदत सीख गए हो और अपनी माँ से झूठ बोल रहे हो।'

'मैं झूठ क्यों बोलने लगा माँ? सोमांक ने फिर वही बात दोहराई।' अब माँ ने उसे तारीख और समय का सही विवरण देते हुए बताया कि किस–किस दिन वह कहाँ गया था? माँ की बात बिलकुल सही थी। अब भला वह क्या बोलता? उसकी पोल पूरी तरह खुल चुकी थी। उसकी आँखें लज्जा से झुक गईं।

माँ धैर्यपूर्वक गंभीर स्वर में समझाने लगीं–देखो सोमांक! नासमझ दोस्तों के साथ रहकर आज तुम्हें स्कूल छोड़कर फिल्म देखना, पिकनिक मनाना, इधर–उधर घूमना अच्छा लग सकता है। हमारा मन बुराइयों की ओर जल्दी दौड़ जाता है। जो व्यक्ति उचित–अनुचित का विवेक छोड़कर जो अच्छा लगे वही करते हैं वे पतन के गर्त में गिरते चले जाते हैं, क्योंकि उनका वह अच्छा लगना सामयिक होता है। बीता हुआ समय तो वापिस आता नहीं, इसलिए

समय बीतने पर वे अविवेकी हाथ मल-मलकर पछताते हैं। अब भविष्य की कल्पना तो करो कि तुम हाईस्कूल फेल हो, न किसी प्रतियोगिता में बैठ सकते हो और न कहीं अच्छी नौकरी पा सकते हो। तुम्हारे पिता कब तक बैठाकर खिलाएँगे। सोचो तब तुम क्या करोगे? यही न कि कोई छोटी-मोटी नौकरी, कुलीगीरी, चपरासी आदि। रही तुम्हारे दोस्तों की बात, उनमें से अधिकतर पैसे वाले व्यापारियों के लड़के हैं, जिनके लिए पढ़ाई का विशेष महत्त्व नहीं। फेल भी हो जाएँगे तो उन्हें क्या हानि? वे अपने पिता के व्यवसाय में लग जाएँगे और जो एक-दो नौकरी पेशे वाले घरों के बच्चे हैं वही अंत में पछतावेंगे। दर-दर की ठोकरें खाएँगे और तब तुम्हारे ये अमीर बिगड़ैल दोस्त उन्हें पहचानने से भी मना कर देंगे। तुम समझदार हो, सोच-समझकर आगे बढ़ो।

वस्तुतः सोमांक न तो मूर्ख था, न नासमझ। वह तो बस बुरी संगत के कारण भटक गया था। माँ ने बड़ी बुद्धिमानी से भविष्य की जो रूपरेखा उसके सामने स्पष्ट की थी, उससे सोमांक की आँखें खुल गईं। अब उसने स्कूल से कक्षा छोड़कर भागना बिलकुल बंद कर दिया। उसने पाया कि वह पढ़ाई में भी बहुत पिछड़ गया है। वह पूरी मेहनत से पढ़ाई में जुट गया। उसके दोस्तों ने उसे बहलाने-फुसलाने की बहुत ही कोशिश की, व्यंग्य भी कसे, पर जब देखा कि उस पर उनकी बात का कोई असर नहीं होता तो उन्होंने स्वयं ही उसका साथ छोड़ दिया। सच है कि व्यक्ति स्वयं बुराई के मार्ग पर बढ़ने से दृढ़ता से मना कर दे तो उसे प्रेरणा देने वाले भी अपना रास्ता बदल लेते हैं। कमजोर मन वाले ही दूसरों के बहकावे में आते हैं।

परीक्षाफल निकला तो सोमांक तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। वह बहुत ही पछताया कि यदि समय बेकार न करता तो अच्छी भी श्रेणी पा सकता था, परंतु अब हो भी क्या सकता था? सिवाय इसके कि वह अपनी क्षति पूर्ति अगले वर्ष में करे। 

माँ की प्राण रक्षा

प्रज्ञा अपने माता-पिता की लाड़ली बिटिया थी। उसे जो भी काम सौंपा जाता, उसे वह बड़ी लगन से पूरा करती थी। स्कूल से लौट कर वह माँ के साथ घर का भी थोड़ा-बहुत काम कराया करती। गंदे बच्चों की भाँति वह मारपीट-झगड़ा आदि नहीं करती थी। अपने छोटे भाई को वह बड़े स्नेह से खिलाती। प्रज्ञा सभी से सम्मान और स्नेहपूर्वक बोलती तथा सभी का आदर करती। उसके माता-पिता और साथी उससे बड़े प्रसन्न रहते थे।

एक दिन की बात है। प्रज्ञा के पिताजी ऑफिस गए हुए थे। स्कूल की छुट्टी होने के कारण वह घर पर ही थी। दोपहर को प्रज्ञा की माँ की तबियत अचानक बिगड़ने लगी। यों तो पिछले दस-बारह दिनों से उन्हें बुखार था, पर इस समय तो उनकी भयंकर स्थिति हो गई। माँ के मुँह से खून निकल रहा था। वे चारपाई पर पड़ी बेचैनी से छटपटाने लगीं। कुछ देर बाद वे जोर-जोर से आवाज करने लगीं और चारपाई से उछलने लगीं। बीच-बीच में बेहोशी का दौरा भी पड़ रहा था। कुछ बोलने पर माँ बोल नहीं रही थीं। सात वर्ष की नन्हीं प्रज्ञा ने पहली बार माँ की ऐसी स्थिति देखी थी। पलभर को वह घबरा गई। उसका मन हुआ कि फूट-फूट कर रो ले। घर में कोई बड़ा व्यक्ति नहीं, दो वर्ष का छोटा भाई नासमझ और नौकर बस यही उस समय घर में थे। इस समय वह अपने आप को बड़ा असहाय-सा अनुभव कर रही थी। पर शीघ्र ही वह सोचने लगी-'ओह! इस समय यों घबराने और रोने से काम न चलेगा। इस समय यदि मैं ही माँ को न सँभालूँगी, तो क्या उनकी स्थिति और न बिगड़ जाएगी?'

इस विचार ने प्रज्ञा में नया साहस भरा। पलभर में ही उसे अपने कर्त्तव्य का बोध हो गया। उसने सबसे पहले नौकर को आवाज लगाई और बोली-'देखो! माँ बहुत बुरी तरह से हिल रही हैं। तुम इन्हें सँभाले रहो, कहीं ये चारपाई से नीचे न गिर पड़ें।'

संकट की उस घड़ी में भी प्रज्ञा का मस्तिष्क तेजी से कार्य कर रहा था। वह तुरंत फोन के पास पहुँची सबसे पहले उसने अपने पारिवारिक चिकित्सक का नंबर मिलाया और उन्हें माँ की स्थिति बतलाई। फोन पर बालिका की घबराई हुई आवाज सुनकर और उसकी माँ की भयंकर स्थिति जानकर डॉक्टर बोला–'बेबी! तुम घबराओ नहीं, मैं अभी तुरंत आता हूँ।

प्रज्ञा को लग रहा था कि माँ की स्थिति आज बहुत खराब है। अकेले पिताजी कहाँ-कहाँ भागदौड़ करेंगे। यह सोचकर उसने शहर में ही रहने वाले अपने एक-दो निकट के रिश्तेदारों को भी फोन कर दिए।

और तब प्रज्ञा माँ की चारपाई के पास ही कुर्सी डालकर बैठ गई। कभी वह उनके मुँह में पानी डालती, कभी ग्लूकोज। जल्दी ही डॉक्टर साहब आ गए। उन्होंने माँ का भलीभाँति परीक्षण किया और आवश्यक दवाएँ दीं। तभी प्रज्ञा के पिताजी भी आ गए। डॉक्टर ने उन्हें बताया–'आपकी पत्नी को मिरगी का भयंकर दौरा पड़ा है। यह तो अच्छा हुआ कि जल्दी ही सूचित कर दिया गया। इन्हें जल्दी ही अस्पताल ले चलिए।

तुरंत ही रोगिणी को एक अच्छे नर्सिंग होम में ले जाया गया। शीघ्र ही चार-पाँच अच्छे डॉक्टर उनके उपचार में जुट गए, पर रोगिणी की स्थिति थी कि सँभलने में ही न आ रही थी। तब सब डॉक्टरों ने एकमत से यह निर्णय दिया–'इनकी चिकित्सा तो किसी बड़े अस्पताल में ही संभव है।

प्रज्ञा के पिताजी तुरंत ही उन्हें 'अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान' दिल्ली ले गए। अब तक रोगिणी की स्थिति मरणासन्न सी हो गई थी। डॉक्टरों ने स्पष्ट कह दिया–'हम इन्हें अच्छे से अच्छा उपचार देने का प्रयास करेंगे, पर इनकी स्थिति बहुत गंभीर है। आप अपने जिस रिश्तेदार को चाहें बुला लें।

अनेक डॉक्टर प्रज्ञा की माँ के उपचार में जुट गए। ७२ घंटे वे मृत्यु से संघर्ष करती रहीं। वे डेढ़ महीने अस्पताल में रहीं, तब कहीं जाकर उनका रोग दूर हुआ।

नन्हीं प्रज्ञा की सूझबूझ और सक्रियता के कारण ही उसकी माँ के प्राणों की रक्षा हो सकी। सभी डॉक्टरों ने एकमत से यह स्वीकार किया कि यदि समय पर चिकित्सक को सूचित न किया जाता तो उनका बचना कठिन था। साहसी, धैर्यशाली और कठिनाइयों में सूझबूझ से काम करने वाले बच्चे परिवार और समाज का गौरव हुआ करते हैं। वे विवेक और चतुरता से संकटों को दूर कर स्वयं को तथा अपने से संबंधित व्यक्तियों को भी कष्ट और पीड़ाओं से उबार लेते हैं।

साहसी बालिका

मधुरलता की माँ बाजार जा रही थीं। वे उस दिन उसे भी साथ लेती गई। उन्हें बाजार से सामान खरीदना था। सामान लाने में सुविधा रहेगी। यह सोचकर उन्होंने मधुर को अपने साथ ले लिया था।

माँ–बेटी सामान खरीद कर घर लौट रही थीं। साँझ हो गई थी। घर जाने की जल्दी में माँ तेज–तेज चल रही थीं। वे मधुर से कुछ आगे भी निकल गई थीं। अंधेरा–सा घिरते चले जाने के कारण लोग बाजार से अपना सामान लेकर तेजी से आ–जा रहे थे। भीड़ में जल्दी न चल पाने के कारण और कुछ इधर–उधर देखते हुए चलने के कारण मधुर माँ से पिछड़ गई।

सहसा मधुर ने देखा कि कोई युवक पीछे से उसकी माँ की चमकती हुई जंजीर की ओर हाथ बढ़ रहा है। उसने जल्दी से अपने हाथ के थैले जमीन पर पटके और तेजी से जाकर पीछे से दोनों हाथों से युवक का कालर कसकर पकड़ लिया। इस बीच वह जंजीर गायब कर चुका था और भाग ही रहा था कि अचानक हुए इस हमले से वह घबरा गया। उसने तेजी से मधुर को धक्का देकर

भागना चाहा, पर मधुर की पकड़ इतनी मजबूत थी कि वह छूट न सका। अब उसने मधुर के पैरों में अपने पैर फँसा कर उसके घुटनों पर टक्कर मारी, जिससे वह गिरते-गिरते बची और लुटेरा उसकी पकड़ से छूटने में सफल होकर भाग निकला। मधुर भी तेजी से उसके पीछे भागती हुई पूरी शक्ति से चिल्लाती जा रही थी- 'चोर-चोर, पकड़ो....पकड़ो।' उसकी चिल्लाहट से आसपास जा रहे व्यक्तियों का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। अनेक व्यक्ति मधुर के साथ दौड़ने लगे। सामने से आते हुए एक व्यक्ति ने भागते हुए लुटेरे को पकड़ लिया। तब तक दूसरे व्यक्ति भी उसके पास आ गए थे। सबने लुटेरे को घेर लिया और लगे उसकी पिटाई करने। लुटेरा बड़ा ही गिड़गिड़ा रहा था और हाथ जोड़कर कह रहा था-'मुझे छोड़ दो, मैंने कुछ नहीं किया।'

हाँफती हुई मधुर ने भीड़ को बताया कि यह व्यक्ति उसकी माँ के गले से जंजीर काटकर भागा है। जंजीर इसी के पास है और कहीं छिपा रखी है। भीड़ में से कई व्यक्ति चिल्लाए-'मारो इसे और लो इसकी तलाशी।'

भीड़ युवक की पिटाई करते हुए कह रही थी-'जंजीर दे दो, हम तुम्हें छोड़ देंगे।' पर वह बार-बार यही कर रहा था कि उसने वह देखी तक नहीं। तब भीड़ से दो-तीन व्यक्ति उसकी तलाशी लेने के लिए निकले। लुटेरा इधर-उधर मुड़ रहा था। उसने बड़ी कठिनाई से अपनी तलाशी लेने दी। आखिर कमीज की बाँह के मुड़े हुए सिरे से जंजीर निकल ही पड़ी। मधुर की माँ ने आगे बढ़कर अपनी जंजीर सँभाल ली। उन्होंने पीछे निगाह दौड़ाकर मधुर के हाथ में लगे थैले खोजे। दो थैले सड़क के बीचों-बीच पड़े हुए थे। उन्होंने जल्दी से उन्हें उठाया और उसी ओर दौड़ी जिधर मधुर गई थी। हाँफते हुए वह भीड़ के पास पहुँच गई थीं। उन्हें जंजीर पा सकने की कोई उम्मीद नहीं थी। वह कुछ डर भी रही थीं कि मधुर किसी खतरे में न पड़ जाए।

भीड़ अब बहुत अधिक क्रुद्ध हो चुकी थी। उसने लुटेरों को मार-मार कर अधमरा कर दिया। फिर वे उसे घसीटते हुए थाने की ओर ले चले, मधुर और उसकी माँ से भी उन्होंने वहाँ चलने के लिए कहा। उन्होंने थाने में उसकी पूरी रिपोर्ट लिखवाई। थानेदार ने लुटेरे के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीं और उसे हवालात के अंदर बंद कर दिया।

मधुर और उसकी माँ ने अपने साथ आए व्यक्तियों को धन्यवाद दिया। उन्हीं के सहयोग से वे जंजीर पा सकी थीं और अपराधी को पकड़ा जा सका था। उन व्यक्तियों ने मधुर के साहस की प्रशंसा की और कहा कि यदि तुम ही इतनी तत्परता न बरततीं तो अपराधी भाग छूटता। थानेदार ने भी पूरी घटना सुनकर मधुर की प्रशंसा की और कहा-'मिल-जुलकर सामना करने से अपराधी तत्त्व दुर्बल पड़ जाते हैं। दो-चार व्यक्तियों के सामने तो वे अपनी धूर्तता दिखा सकते हैं, परंतु जब पूरा का पूरा समूह उनका सामना करता है, तो वे भी शक्तिहीन हो जाते हैं। अपराधी को बढ़ावा तब मिलता है, जब व्यक्ति यह सोच लेते हैं कि हमें क्या पड़ी, हम क्यों बोलें और क्यों किसी की सहायता करें? पर यह प्रवृत्ति गलत है, समाज के लिए घातक है, इससे अपराधी तत्त्व और सिर उठाते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम पर भी कभी संकट आ सकता है। अगर हम आपस में दूसरे की सहायता नहीं करेंगे तो दूसरे ही हमारी क्यों सहायता करेंगे?'

थानेदार ने उन सभी व्यक्तियों की प्रशंसा की, जिन्होंने मधुर का साथ दिया था और अपराधी को पकड़वाया था।

रात होने लगी थी। थाने से सभी खुशी-खुशी अपने घर की ओर चले। मधुर और उसकी माँ घर पहुँचीं तो देखा कि पिताजी और भाई उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे थे। बड़ी देर लगा दी तुम लोगों ने। दिन में ही बाजार का काम क्यों नहीं कर लिया करतीं। पिताजी कहने लगे।

आ तो समय से ही जाते, पर एक बहुत बड़ी मुसीबत में फँस गए। भगवान की कृपा है कि राजी-खुशी घर आ गए। मधुर की माँ बोली।

क्यों? ऐसा क्या हुआ? पिताजी और भाई एक साथ बोल पड़े।

मधुर की माँ ने उन्हें पूरी घटना सुनाई। पिताजी और भाई ने मधुर के साहस और तत्परता की बहुत प्रशंसा की। उसके कारण वे चार-पाँच हजार की हानि से बचे थे।

फिर मधुर के पिताजी उसकी माँ से बोले-'तुम अकेली बाजार जातीं तो निश्चित ही जंजीर लुटा कर लौटतीं। हमने तुमसे कितनी बार कहा है कि सोने के कोई भी आभूषण पहनना आजकल खतरे से खाली नहीं।

आज आपकी बात मेरी समझ में अच्छी तरह से आ गई है। जब अन्य धातुओं के आभूषण इससे सुंदर और सस्ते मिल सकते हैं तो फिर इतना खतरा मोल लेने की क्या आवश्यकता? यह कहते हुए मधुर की माँ ने अपनी सोने की जंजीर और चूड़ियाँ उतारकर मेज पर रख दीं।

माँ की तत्परता देखकर बच्चे हँसते हुए बोले-'देर आए दुरुस्त आए।

दूसरे दिन यह घटना समाचार पत्रों में छपी। नगर किशोर संस्था ने मधुर को उसके साहस के लिए पुरस्कृत किया। जागरूक रहने वाला और साहस से काम लेने वाला व्यक्ति ही दूसरों द्वारा छले जाने से बचता है तथा अन्यों को भी बचाता है।

जहाँ बुद्धि, वहाँ बल

दिन के बारह बजे थे। मई का महीना था। कड़ी धूप तथा गरमी पड़ रही थी। सुजाता घर का काम करके अभी-अभी निपटी थी। पति ऑफिस और बच्चे स्कूल जा चुके थे। अचानक दरवाजे

पर खट-खट हुई। सुजाता ने दरवाजा खोलने पर पाया कि दो भद्र से दीखने वाले व्यक्ति वहाँ खड़े हैं।

भटनागर साहब हैं? उनमें से एक व्यक्ति ने उनके पति के लिए पूछा।

नहीं हैं, वे तो ऑफिस जा चुके हैं। सुजाता बोली।

हम उनके मित्र हैं। कानपुर से आए हैं। हमें उनका पता दे दीजिए, ऑफिस में ही मिल लेंगे। वह व्यक्ति बोला।

ओह! बहुत गरमी है, पीने के लिए पानी मिलेगा क्या? दूसरा व्यक्ति बोला।

अवश्य-अवश्य, क्यों नहीं। सुजाता बोली और पानी लेने अंदर चली गई।

सुजाता पानी लेकर लौटी तो वे दोनों व्यक्ति बरामदे में रखी हुई कुर्सियों पर बैठे हुए थे। पानी पीकर उन्होंने फिर पता माँगा। सुजाता कागज और पैन लेकर अंदर से लौट रही थी कि सहसा ही उसके पैर ठिठक गए। वे दोनों व्यक्ति बाहर निकलने का दरवाजा बंद कर चटखनी लगा रहे थे। यह देखकर सुजाता का माथा कुछ ठनका। दो अपरिचित और घर में वह अकेली..। वह अगले ही क्षण पीछे लौट गई। वह भागकर पीछे के दरवाजे से बाहर निकल गई। फिर उसने जल्दी से पीछे और आगे के दोनों दरवाजे बाहर से बंद कर दिए। यह सब कुछ पलक झपकते ही हो गया। विपत्ति पड़ने के समय प्रत्युत्पन्नति और साहस ही सबसे बड़े हथियार होते हैं।

सुजाता दौड़कर पड़ौस के घरों में गई और वहाँ से चार व्यक्तियों को बुलाकर लाई। पीछे के दरवाजे से चुपचाप दो व्यक्ति सुजाता के साथ घर में घुस गए तथा दो व्यक्ति आगे के दरवाजे के बाहर छिपकर खड़े हो गए।

जैसी ही सुजाता उन अपरिचितों के निकट पहुँची तो एक ने झपट कर उसके गले में पड़ी सोने की चैन खींचनी चाही। अब यह

सिद्ध हो चुका था कि वे व्यक्ति अपराध की नीयत से ही घर में घुसे हैं। पीछे छिपे हुए दोनों पड़ौसियों ने तुरंत ही उन लुटेरों को धर दबोचा। अचानक की पकड़ से वे हतप्रभ हो गए। उन्हें तो यही पता था कि सुजाता घर में अकेली है।

अब सुजाता ने बढ़कर आगे दरवाजा खोल दिया। बाहर खड़े दोनों पड़ोसी भी अंदर आ गए। चारों पड़ोसियों ने मिलकर दोनों लुटेरों के हाथ-पैर रस्सियों से कसकर बाँध दिए। तब दो व्यक्ति पुलिस को सूचित करने थाने गए। थोड़ी देर बाद ही पुलिस के सिपाही आकर उन्हें पकड़ ले गए। थाने में जब उनकी तलाशी ली गई तो छुरा-रिवाल्वर आदि उनके पास से बरामद हुए। पुलिस ने फाइलें खोलने पर पाया कि वे छँटे हुए बदमाश हैं और कई मामलों में उनकी तलाश है। उन्होंने सुजाता और उसके पड़ोसी साथियों को अपने काम में सहयोग देने के लिए धन्यवाद दिया।

नगर निगम परिषद ने सुजाता को एक सार्वजनिक समारोह में पुरस्कृत किया। उसने उस पुरस्कार को अपने चारों पड़ोसियों के साथ बाँटने की घोषणा करते हुए कहा-'यदि ये सच्चे पड़ोसी के धर्म का निर्वाह करते हुए तुरंत समय पर सहायता के लिए न दौड़े आते तो उन अपराधियों को पकड़ना कठिन ही था। यदि हम साहस न छोड़ें, एक-दूसरे की सहायता करें और मिल-जुलकर ही मुकाबला करें तो अपराधी बचकर नहीं जा सकता। हमारा कर्त्तव्य है कि संकट आने पर हम दूसरे को अकेला न छोड़ें अपितु उसकी पूरी तरह सहायता करें। मिल-जुलकर मुकाबला करने से विपत्ति दूर होते देर नहीं लगती।

भलाई का काम

ऋषिकेशन उड़ीसा के गंजाम जिले में रहता था। वह हरिहर हाईस्कूल में आठवीं कक्षा में पढ़ता था। वह अपने साथियों का बड़ा ही दुलारा था और अध्यापकों का प्रिय था। ऋषिकेशन पढ़ाई

में तो सदा प्रथम रहता ही था, इसके साथ-साथ खेल-कूद, वाद-विवाद आदि प्रतियोगिताओं में भाग लेता, स्कूल में विविध रचनात्मक कार्यों को करता और पुरस्कार पाता। अपने साथियों से वह प्रेम भरा व्यवहार करता, उनकी सहायता करता, सहयोग देता। वह अध्यापकों का सदा सम्मान करता, उनकी आज्ञा का पालन करता था। इन सबके कारण ही ऋषिकेशन अपने स्कूल का सबसे अधिक लोकप्रिय छात्र था।

एक दिन ऋषिकेशन स्कूल जा रहा था। उस दिन उसे कुछ देर हो रही थी, इसलिए वह सीधे रास्ते से न जाकर छोटे रास्ते की ओर मुड़ गया। यह रास्ता सुनसान पगडंडी से होकर जाता था। ऋषिकेशन तेजी से चला जा रहा था। सहसा उसकी निगाह तालाब की ओर गई। वहाँ दो बालिकाएँ डूब रही थीं। वे नहाने के लिए आई थीं। पानी में खिलवाड़ करते हुए उन्हें ध्यान न रहा और उस स्थान पर पहुँच गईं, जहाँ काई जमी हुई थी। वहाँ उनका पैर फिसल गया और वे पानी की गहराई की ओर बहती चली गईं। ऋषिकेशन ने देखा कि वे तालाब के बीच में पहुँच चुकी हैं और किसी भी पल डूब सकती हैं। उसने तुरंत अपना बस्ता एक ओर फेंका, कपड़े उतारे और तालाब में कूद पड़ा। कुछ देर तक प्रयास करने के बाद ऋषिकेशन उन दोनों लड़कियों को किनारे पर लाने में सफल हो गया।

अब ऋषिकेशन के सामने एक और समस्या खड़ी हुई, वह यह कि दोनों लड़कियाँ बेहोश थीं। ऋषिकेशन ने कुछ देर उन्हें होश में लाने का प्रयास किया, पर सब व्यर्थ। उसने सहायता के लिए इधर-उधर देखा लेकिन वहाँ किसी राहगीर का नाम-निशान तक नहीं था। अब ऋषिकेशन ने अधिक समय गँवाना उचित न समझा। वह उन्हें वहीं छोड़कर बस्ती की ओर चला गया। उसने जल्दी से एक टैम्पो किया और तालाब के पास पहुँचा। उसने दोनों बालिकाओं को टैम्पो में लिटाया और जल्दी से अस्पताल पहुँचाया।

वहाँ पर डॉक्टरों ने उन्हें तुरंत चिकित्सा दी। दोनों बालिकाओं के फेफड़ों, नाक और गले में पानी भर गया था। यदि जल्दी ही उन्हें पानी से न निकाला जाता तो साँस घुट सकती थी। बालिकाएँ काफी देर के प्रयास के बाद होश में आईं, तब ऋषिकेशन ने उनसे घर का पता मालूम किया। एक पुलिस अधिकारी की बेटी थी, तो दूसरी उसके स्कूल के अध्यापक की पौत्री। दोनों के अभिभावकों को सूचित कर दिया गया।

बालिकाओं के पानी में डूबने की बात जानकर उनके अभिभावक दौड़े चले आए। अस्पताल आकर उन्हें सारी घटना का पता लगा तो उन्होंने ऋषिकेशन को गले लगा लिया। उसके कारण ही आज उनकी बालिकाओं के प्राण बचे थे। उसने अपने आपको खतरे में डालकर भी उनकी रक्षा की थी। हरिहर स्कूल के अध्यापक ऋषिकेशन की पीठ पर हाथ फिराते हुए कहने लगे–"शाबास ऋषिकेशन शाबाश! तुमने अपने गौरव के अनुरूप ही यह महान कार्य किया है। तुम जैसे साहसी और परोपकारी बच्चों पर हमारे इस स्कूल को गर्व है। तुमने इस विद्यालय का नाम रोशन किया है।

अध्यापक ने प्रधानाचार्य को सारी घटना बताई। ऋषिकेशन ने दो बालिकाओं के प्राणों की रक्षा की है-यह जानकर वे बहुत प्रसन्न हुए। दूसरे ही दिन उसका सार्वजनिक रूप से स्वागत किया गया। इस अवसर पर ऋषिकेशन के माता-पिता को भी बुलाया गया था। वे अपने बेटे को इस प्रकार सम्मानित देखकर आज अत्यधिक प्रसन्न थे।

पुलिस अधिकारी ने इस घटना का समाचार भारतीय बाल विकास समिति को भेज दिया और तब ऋषिकेशन को प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार पाने और राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित होने का सौभाग्य भी मिला।

फल की चिंता किए बिना जो दूसरों की सेवा-सहायता अपना कर्त्तव्य समझकर करता है, वह अकस्मात ही महानता के मार्ग को अपना लेता है। वह स्वयं भी प्रगति करता है और अपने आस-पास वालों के लिए भी प्रेरणा सूत्र बनता है।

नानाजी का नुस्खा

नंदन दस वर्ष का बालक था। वह छठी कक्षा में पढ़ता था। यों नंदन प्रतिभाशाली था, पर परीक्षा में उसके उतने अंक नहीं आते थे, जितने कि आने चाहिए थे। कारण कि उसका स्वास्थ्य प्राय: खराब रहता था। बचपन से ही उसे अजीर्ण की बीमारी हो गई थी। उसका पेट प्राय: खराब रहता था। तरह-तरह की दवा की शीशियों से उसकी अलमारी भरी पड़ी थी, परंतु कोई दवा पूरी तरह असर ही न करती थी। कारण यह था कि नंदन बड़ा दुबला-पतला था। उसके साथी उसे 'सींकिया पहलवान' कहकर चिढ़ाया करते थे। अपने शरीर को देखकर नंदन का मन भी बड़ा खिन्न होता था, पर किया भी क्या जा सकता था। उसके माता-पिता हार मानकर चुप बैठ गए थे। उन्होंने नगर का कोई डॉक्टर-वैद्य भी न छोड़ा था।

छुट्टियों में नंदन अपनी माँ के साथ ननिहाल गया। नंदन के नानाजी गर्मियों में हर बार हिमालय की गोद में बसे किसी तीर्थस्थान में जाते थे। उनका कहना था कि इस प्रकार मैदान की भीषण गर्मी से छुटकारा मिल जाता है। साथ ही साथ वर्ष में दो मास आध्यात्मिक प्रगति का, अपने आप के विषय में मनन-चिंतन का सुयोग भी प्राप्त हो जाता है। मात्र भौतिक उन्नति ही की जाए और आत्मिक प्रगति न की जाए तो व्यक्ति सदैव अपूर्ण और असंतुष्ट ही रहता है।

इस वर्ष नंदन के नानाजी का देवप्रयाग जाने का कार्यक्रम था। ऋषिकेश से ७१ किलोमीटर की दूरी पर बसा यह उत्तराखंड का

दर्शनीय स्थान है। भागीरथी और अलकानंदा के संगम पर बसा यह नगर स्वास्थ्यप्रद जलवायु और मोहक दृश्यों से युक्त है।

नानाजी ने नंदन की माँ से आग्रह किया कि नंदन को लेकर वे भी उनके साथ चलें। संभव है कि पर्वत की शुद्ध जलवायु के सेवन से नंदन के स्वास्थ्य में कुछ सुधार आ जाए। नंदन की माँ खुशी-खुशी तैयार हो गईं। नंदन की प्रसन्नता की तो सीमा ही न थी। जब भी वह किसी पर्वतीय स्थान पर जाता तो प्रकृति के उस दिव्य सौंदर्य को देखकर उसका मन असीम आनंद से भर उठता था।

एक दिन नंदन, उसकी माँ और नानाजी-सभी देवप्रयाग जा पहुँचे। वहाँ एक धर्मशाला में उनके रहने की सुविधापूर्ण व्यवस्था हो गई। नंदन यहाँ पहली बार आया था उसे यह बहुत अच्छा लग रहा था। यहाँ ऊँचे-ऊँचे मकान उसे बहुत पसंद आए जो भागीरथी और अलकनंदा के किनारे-किनारे ऊँची-नीची पहाड़ी पर बने हैं।

दूसरे ही दिन नानाजी ने घोषणा कर दी-"दो दिन रास्ते की थकान मिटा सकते हो। उसके बाद सभी को निश्चित कार्यक्रम के अनुसार नियमित और व्यवस्थित चलना होगा।

नंदन के लिए यह बात नई न थी। वह यह जानता था कि नानाजी का जीवन बड़ा अनुशासित है। वे जागना, खाना, सोना, घूमना आदि सभी समय से करते हैं। सुखी और स्वस्थ जीवन लिए वे दिनचर्या का नियमित होना आवश्यक बतलाते थे। उसे उसमें किसी प्रका की ऊब नहीं होती थी, वरन समय पर हर काम के होने से खुशी ही होती थी।

दूसरे ही दिन नंदन के नानाजी ने सभी के लिए दिनचर्या निर्धारित कर दी। नानाजी चार बजे उठते, नंदन और उसकी माँ पाँच बजे। पाँच बजे तक नहा-धोकर नानाजी पूजा करने बैठ जाते। वे मधुर स्वरों में गीता का पाठ करते तो नंदन की

आँखें खुल जातीं। वह बिना माँ के कहे, आलस छोड़कर जल्दी उठ जाता। छः बजे तक नंदन और उसकी माँ भी नहा-धोकर तैयार हो जाते । तब तक नानाजी पूजा समाप्त कर चुकते, उस समय तक सूरज की किरणें चारों ओर फैल जाती थीं। नानाजी खुली जगह में स्वयं आसन प्राणायाम करते और नंदन को भी सिखाते। नंदन थक जाता तो बीच-बीच में रुक जाता। नानाजी आधा घंटे तक व्यायाम, आसन, प्राणायाम आदि करते रहते। इसके बाद घर आकर वे कुछ देर विश्राम करते और ठीक सात बजे सभी नाश्ता लेते। नाश्ता भी जो चाहे सो नहीं मिलता था। दूध, भीगी हुई अंकुरित दालें, उबले चने, भुनी हुई दाल, सोयाबीन, ताजे फल आदि में से ही नाश्ता में कुछ रहता। नाश्ते के बाद नानाजी नंदन को लेकर घूमने निकल जाते। वे आसपास धीरे-धीरे टहलते। नंदन को वे उस स्थान का, आसपास के व्यक्तियों और वस्तुओं का परिचय देते जाते। आधा घंटे में वे घर लौट आते। घर आकर वे कुछ देर विश्राम करते फिर नानाजी अच्छा साहित्य पढ़ते। वे अध्ययन के बड़े शौकीन थे। जीवन निर्माण करने वाली, ज्ञानवर्द्धक अनेक पुस्तकें उनके पास थीं। वे कहा करते थे कि श्रेष्ठ पुस्तकें देव मूर्तियाँ हैं, उनकी उपासना करने से तत्काल ही फल मिलता है। वे हमें जीवन का सही मार्ग बताती हैं। कठिनाइयों में धैर्य बँधाती हैं, प्रेरणा, प्रकाश और उल्लास देती हैं। नानाजी ने नंदन के लिए भी बाल साहित्य की अनेकों सुंदर पुस्तक और पत्रिकाएँ खरीद दी थीं। वे जहाँ भी अच्छी पुस्तकें और पत्रिकाएँ देखते तो अवश्य खरीदते। नानाजी और नंदन दोनों ही एक घंटे पढ़ते। यदि कुछ समझ में न आता तो नंदन बीच-बीच में नानाजी से पूछता जाता। नानाजी को भी पढ़ते हुए जो बात अच्छी लगती, नंदन को समझाते जाते।

ग्यारह बजे सभी भोजन लेते। भोजन सुपाच्य, सात्विक और कम मसाले वाला होता। चपाती, चावल, सब्जी, दाल, दही, सलाद आदि ही भोजन में रहते। नानाजी कहते थे कि तले हुए, चटपटे, मावा और चीनी वाले गरिष्ठ पदार्थ पाचन शक्ति को बिगाड़ देते हैं। अपच ही सब रोगों की जड़ है, इसलिए आवश्यकता से अधिक खाना, तली चीजें खाना–इन दोनों बातों से बचना चाहिए। नंदन की आदत थी जल्दी–जल्दी ग्रास निगलने की, पर नानाजी कहते थे कि चबा–चबाकर शांत और प्रसन्न मन से खाया गया भोजन ही लाभकारी होता है। वे नंदन में भी धीरे–धीरे चबा–चबाकर खाने की आदत डालकर ही माने।

खाने के बाद वे सभी विश्राम करते–सोते। दो बजे तक उठ जाते, फिर चाय पीते और गपशप करते। नंदन के नानाजी सेना में मेजर रह चुके थे। वे इतनी रोचक और ज्ञानवर्द्धक बातें करते कि दोनों माँ–बेटे सुधबुध खोकर उन्हें सुनते रहते। उन्हें विश्व के विविध देशों की, अपने देश के विविध स्थानों की और सैनिक जीवन की अनेक जानकारियाँ थीं। नंदन ने संकल्प किया कि बड़ा होकर वह भी सैनिक बनेगा और मातृभूमि के लिए स्वयं को अर्पित कर देगा।

इस सब में शाम के आठ बज जाते। ४ से ५ बजे तक का समय पूरी तरह से नंदन के लिए था। नानाजी उसे पाठ्यक्रम से संबंधित पुस्तकें पढ़ाते। साथ ही वे नंदन को छोटी–छोटी कहानी, लेख, संस्मरण आदि लिखने के लिए प्रोत्साहित करते। नंदन जो लिखता उसमें वे संशोधन करते। कुछ को उन्होंने पत्र–पत्रिकाओं में भेज दिया था। पहली बार एक स्थानीय समाचार पत्र में नंदन की रचना छपी थी। नंदन उसे देखकर फूला न समाया था। यह सब नानाजी की प्रेरणा–प्रोत्साहन का ही फल था। नानाजी कहा करते थे कि संकल्प और लगन से किए कार्य में सदैव सफलता मिलती है।

४ से ५-३० तक सभी मिलकर खाना बनाते और खाते। कुछ धूप ढलने पर वे सभी घूमने निकल पड़ते। कभी ये देव प्रयाग के विविध मंदिर देखते, कभी अलकनंदा और भागरथी के संगम की ओर निहारते तो कभी महात्माओं के प्रवचन सुनते। नंदन यद्यपि छोटा था, प्रवचन पूरी तरह से समझ नहीं पाता था, पर वह एकाग्र चित्त से उन्हें अधिक से अधिक समझने का प्रयास करता। वहाँ पर बैठना उसे बहुत अच्छा लगता। नानाजी प्राय: कहा करते थे कि भौतिक धन-संपत्ति से कभी आंतरिक सुख-शांति नहीं मिल सकती। जो आत्म-चिंतन, आत्म-मनन और आत्म-शोधन करते हैं वे ही आंतरिक सुख शांति पाते हैं।

रात्रि को आठ बजे तक सभी घर लौट आते। नंदन की माँ झटपट दूध गरम करतीं और दूध पीकर ९ बजे तक सभी सदस्य सो जाते।

इस प्रकार महीन बीत चला। नंदन नानाजी से बोला-"यह समय तो पंख लगाकर उड़ गया, बिलकुल पता ही न लगा।" नानाजी कहने लगे-"समय सादा तेजी से भागता है। बीता हुआ समय कभी लौटकर नहीं आता। इसलिए समय का जो जितना सदुपयोग करते हैं, जीवन में वे उतने ही सफल होते हैं।

कुछ दिन बाद ही उनका वापिस लौटने का समय आ गया। नंदन का तो वहाँ से वापिस आने का मन ही नहीं कर रहा था। उसका मन तो उत्तुंग पर्वतमाला और कल-कल करती मंदाकिनी में ही रम गया था। दूसरे यहाँ आकर उसका स्वास्थ्य भी आश्चर्यजनक रूप से सुधर गया था। दवाओं से उसका पिंड छूट गया था। उसे आश्चर्य भी हो रहा था कि बिना दवाओं के वह कैसे ठीक हो गया। उसने अपनी यह शंका जब नानाजी के सामने रखी तो वे मुस्कराते हुए बोले-"नंदू! यहाँ की स्वच्छ जलवायु, प्राकृतिक वातावरण स्वयं में अच्छी औषधि है। अधिकांश

व्यक्ति सोचते हैं कि अच्छा स्वास्थ्य दवाओं से और मँहगा खाना खाने से बनता है, पर यह सब सोचना उनकी भूल ही है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए तीन महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं–उन्नत विचार, शुद्ध भोजन और नियमित व्यायाम–विश्राम।

नंदन स्पष्ट रूप से नानाजी की बात न समझ सका। वह प्रश्नवाचक दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा। नानाजी फिर समझाने लगे–"काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, असंतोष आदि से मन को दूषित बनाना बीमार पड़ने का महत्त्वपूर्ण आंतरिक कारण है। अतएव मस्तिष्क को ऊँचे और आशावादी विचारों का अभ्यास कराओ। भोजन के लिए आवश्यक है कि समय पर ही भोजन करना। हमें जीने के लिए खाना चाहिए, जब कि मनोवृत्ति यह बनती जा रही है कि हम खाने के लिए जीते हैं। याद रखो! अच्छा स्वास्थ्य दवाओं और पैसे से नहीं खरीदा जा सकता। कीमती चीजें खाकर आरोग्य पाने की बात सोचना भी बेकार है। यह सुरक्षा तो निर्भर होती है–संयमित विचार, नियमित भोजन, व्यायाम और श्रम संतुलन पर। जो इनमें समायोजन बनाए रखता है, वही अच्छे स्वास्थ्य का आनंद पाता है।

नानाजी की बातों ने नंदन को गहराई से प्रभावित किया। करता भी क्यों नहीं, वह स्वयं देख रहा था कि उनके निर्देशन के अनुसार चलकर उसने आरोग्य का आनंद पा लिया था। जो काम दवाओं से न हो सका, वह नानाजी के नुस्खे से पूरा हो गया था। उसने यह दृढ़ संकल्प किया था कि सदैव नानाजी की इन सभी शिक्षाओं का पालन करेगा। स्वास्थ्य की जो निधि उसने पाई है, उसकी सुरक्षा करेगा।

देव प्रयाग की गोद में खुशी–खुशी अपनी छुट्टियाँ बिताकर नंदन वापिस घर पहुँचा। स्कूल खुल गए थे। नंदन नए उत्साह से अपनी पढ़ाई में जुट गया। साथी उसके उत्साह और लाल–लाल

गालों को देखकर हैरान थे। मरियल-सा रहने वाला नंदन अब हर कार्य में उल्लास से भाग लेता। मित्र पूछते थे-"नंदन! तुमने छुट्टियों में क्या खाया है?"

नंदन हँसकर कहता-'नानाजी का नुस्खा।'

नंदन अभी भी नानाजी की शिक्षाओं का पूरी तरह पालन करता है। वह मन को प्रसन्न रखता है, अच्छी बातें सोचता है। वह प्रात:काल जल्दी उठकर नियमित रूप से व्यायाम करता है और खेलों में रुचिपूर्वक भाग लेता है। भोजन में तो यह अत्यधिक सावधानी बरतता है। बाजार की चटपटी चीजें देखकर उसे नानाजी की बात याद आ जाती है-"खाने से पहले सोचो कि क्या इसकी तुम्हारे लिए आवश्यकता है? पेट को कूड़ेदान मत बनाओ कि जो हाथ पड़ा वही अंदर डाल दिया।"

अब नंदन न केवल अपनी पढ़ाई में अपितु स्कूल के अन्य कार्यक्रमों में भी सबसे आगे रहता है। घर के कामों में भी वह माँ का हाथ बँटाता है। उसके अध्यापक और अभिभावक दोनों ही उससे प्रसन्न रहते हैं।

परिवार का बल-सहकार

अंकुर मध्य वर्गीय परिवार का लड़का था। उसकी माँ प्राय: बीमार रहा करती थीं। उनके पेट में अल्सर था, जिसके कारण उन्हें परेशानी बनी रहती थी। छोटा-सा परिवार था, अंकुर, उससे छोटी एक बहिन और माता-पिता। पिताजी तो अपनी नौकरी में व्यस्त रहते थे। सुबह घर से निकलते तो शाम ढले ही आ पाते। सारे दिन के परिश्रम से वे थके हुए होते।

माँ के बीमार रहने से घर के काम-काज की व्यवस्था बिगड़ने लगी। बहिन अंकुर से छोटी थी। आठवीं कक्षा में पढ़ती थी। वह आखिर कितना काम सँभालती? पिताजी के पास अधिक समय न था। उनके पास इतना पैसा न था कि वे नौकरानी रख पाते। फिर माँ

की दवा और पढ़ाई में भी काफी पैसा उठ रहा था। पड़ोसी या रिश्तेदार भी आखिर कब तक उनके घर का काम संभालते? अब तो यह रोज-रोज की ही समस्या हो चली थी। माँ बीमारी की स्थिति में काम करने की कोशिश करतीं, तो उनकी तकलीफ और बढ़ जाती। परिणाम यह हुआ कि घर में अव्यवस्था और गंदगी फैलने लगी।

आखिर अंकुर से अब न रहा गया। वह सोचने लगा-"माँ ही सब काम करें, भले ही वे स्वस्थ हों या अस्वस्थ-यह कहाँ का न्याय है? क्या माँ का सारा काम मैं, अंशू और पिताजी मिलकर नहीं कर सकते?

दूसरे दिन वह एक घंटे पूर्व ही उठ गया और झाड़ू उठाकर लगाने लगा। माँ ने उसे मना किया, पर उसने स्पष्ट कह दिया-अपने घर का काम करने में कोई बुराई नहीं है माँ! घर के सभी सदस्यों को थोड़ा-थोड़ा काम करना ही चाहिए। मैं कुछ काम कराकर स्कूल जाया करूँगा। मुझे कोई परेशानी नहीं है।

माँ ने कभी भी अंकुर को किसी भी काम से हाथ न लगाने दिया था। उन्हें बहुत बुरा लग रहा था, परंतु अंकुर ने उनकी एक भी न सुनी और न ही उन्हें काम करने दिया। वह झाड़ू लगाता गया और अंशू से पोंछा लगाने के लिए कहा। काम करने का अभ्यास तो उसे था नहीं। झाड़ू साफ न लगने पर माँ के टोकने पर उसने यही कह दिया कि थोड़े दिन काम करने के बाद सब करना आ ही जाएगा।

रसोईघर में भी सभी ने मिल-जुल कर काम किया। किसी ने सब्जी काटी, किसी ने दाल-चावल साफ किए, किसी ने आटा मला। दो घंटे के अंदर ही खाना बन गया, सभी ने खा-पी लिया और रसोईघर की सफाई भी हो गई। दस बजे अंकुर और अंशू अपने विद्यालय और पिताजी ऑफिस चले गए। अब घर में कोई

काम न था। माँ निश्चिंत मन से आराम करने लगीं। दोपहर में उठकर उन्होंने बच्चों के लिए हलका-फुलका नाश्ता तैयार कर दिया। आज उन्हें बिलकुल भी थकान अनुभव न हो रही थी।

बच्चों ने स्कूल से आकर नाश्ता किया और खेलने चले गए। यहाँ से लौटकर वे दो घंटे बैठकर पढ़े और अपना गृहकार्य पूरा किया। रात का खाना भी सभी ने मिल-जुलकर बना लिया था। इस तरह साथ-साथ काम करने से किसी को अरुचि या थकान भी नहीं हो रही थी।

धीरे-धीरे सभी काम करने के अभ्यस्त हो गए। अब वे थोड़े समय में अच्छा काम करने लगे। कुछ ही महीनों में तीनों ही खाना बनाने में निपुण हो गए। भारतीय समाज में लड़कों को घर का काम करने, खाना बनाने की परंपरा प्रायः नहीं है। कुछ दिन तो अंकुर और उसके पिताजी को लोगों ने टोका भी और व्यंग्य भी किए, परंतु उन्होंने यह कहकर हँसकर टाल दिया कि जब हम भी खाते हैं, तो पकाने में क्या बुराई है? परंपरा के विरुद्ध जब कोई कार्य किया जाता है तो कुछ समय तो व्यक्ति हँस सकते हैं, परंतु उसकी अच्छाई समझ कर अंत में वे चुप हो जाते हैं। कुछ दिन बाद अंकुर और उसके पिताजी से इस विषय में कुछ कहना लोगों ने प्रायः बंद ही कर दिया।

उचित विश्राम और औषधि मिलने से कुछ समय में माँ ठीक हो गईं। अंकुर की बुद्धिमानी और परिश्रम ने उनके घर के प्रति मानसिक तनाव को दूर कर स्वास्थ्य सुधारने में बहुत सहयोग दिया। माँ ने बहुत मना किया, परंतु अंकुर ने उन्हें समझा भी दिया-माँ अकेले काम करने से वह देर से समाप्त होता है और अकेला व्यक्ति थक भी जाता है। हम लोग बाहर मानसिक श्रम करते हैं। हमें थोड़ा-बहुत शारीरिक परिश्रम भी तो करना चाहिए। घर का काम सभी मिल-जुलकर करें तो वह जल्दी भी समाप्त

होगा और हम सब भी स्वनिर्भर बनेंगे, साथ ही हर परिस्थिति में हमें रहने का अभ्यास भी होगा।

अब मिल-जुलकर कार्य करना उस परिवार की परंपरा ही बन गई है। माँ को अपने परिवार के सदस्यों पर गर्व है।

महात्मा और उनके चेले

बहुत समय पहले काशी नगरी में एक महात्मा रहा करते थे। वे गंगा के किनारे अपना आश्रम बनाकर रहते थे। उनके साथ उनके अनेक शिष्य भी रहा करते थे।

महात्मा जी का सारा जीवन तप और त्याग में बीता था। अनेक वर्षों तक वे केवल दूध पीकर रहे थे। सभी भोगों को उन्होंने छोड़ दिया था। धरती पर टाट बिछाकर सोते थे। जाड़े हों या गरमी केवल एक ही कपड़ा पहनते थे। दीन और बीमारों की सेवा करना, गरीबों की सहायता करना आदि उनका प्रतिदिन का काम था। वे प्रत्येक मनुष्य में भगवान के दर्शन करते थे।

महात्मा चाहते थे कि उनके शिष्य भी उनके जैसे बनें, पर उनके शिष्य न तो महात्माजी की भाँति दूसरों की सेवा-सहायता करते थे, न किसी दुखी के दुख को दूर करते थे। फिर भी वे सभी यह चाहते थे कि एकदम महात्मा जैसे सिद्ध पुरुष और लोकप्रिय बन जाएँ। वे महात्मा जैसे गेरुए कपड़े पहनते थे, वैसी ही उन्होंने दाढ़ी बढ़ा ली थी, गले में रुद्राक्ष की माला पहनी थी। महात्मा की भाँति ही वे आसन लगाते थे और प्राणायाम करते थे। इस प्रकार बाहरी वेशभूषा और कार्यों का अनुकरण करके सभी शिष्य यह सोचने लगे थे कि हम सब भी गुरु की भाँति महान महात्मा बन गए हैं। उन्हीं की भाँति योगी और तपस्वी बन गए हैं, उन्हीं की भाँति हमें प्रसिद्धि मिलेगी।

धीरे-धीरे उन शिष्यों का घमंड बढ़ता ही गया। वे भी यह चाहने लगे थे कि सभी व्यक्ति महात्माजी की भाँति उनका सम्मान करें, पर इसके लिए वे उनके किसी भी गुण को अपनाने की कोशिश नहीं करते थे। एक दिन महात्मा जी अपने शिष्य से बोले-'बच्चो! नदी पार गाँव के मुखिया ने हमें निमंत्रण दिया है। चलो आज उनके यहाँ यज्ञ कराने चलें। हम सब आज भोजन भी वहीं पर ही करेंगे।

अनेक शिष्य तो बढ़िया पकवानों के लालच में ही तैयार हो गए थे। महात्मा जी के आश्रम में तो बस छाछ के साथ सूखी रोटियाँ ही खाने को मिलती थीं।

महात्माजी और उनके शिष्यों ने मिल-जुलकर यज्ञ कराया। इसके बाद महात्मा जी ने प्रवचन दिया। उपस्थित व्यक्तियों को अच्छे गुण अपनाने की प्रेरणा दी। महात्माजी के व्याख्यान से सभी व्यक्ति बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे अपनी उन्नति करेंगे, अपने परिवार को अच्छा बनाएँगे और समाज का निर्माण करेंगे। वास्तव में बात कुछ ऐसी थी कि महात्मी की वाणी बड़ी प्रभावपूर्ण थी। वह लोगों को आंतरिक प्रेरणा देती थी। जो सच्चे मन, वचन और कर्म से सद्गुणों का पालन करते हैं, उनकी वाणी ऐसी ही बन जाया करती है।

यज्ञ के बाद शिष्य सोच रहे थे कि अब खाने को खूब पकवान मिलेंगे। पर यजमान ने बस प्रसाद दिया और सबको विदा कर दिया। शिष्य बड़े उदास हुए, उन्हें लगा कि अब किसी तरह जल्दी से जल्दी घर पहुँचा जाए। पकवान न सही सूखी रोटी ही सही, पेट में कुछ तो पहुँचे।

पर शायद आज यह भी न होना था। महात्मा आसपास के गाँवों में बड़े लोकप्रिय थे। यज्ञ के बाद अनेक व्यक्ति उनके पास आए, सभी हट कर रहे थे कि वे कुछ देर को उनके घर चलें।

किसी के घर में रोगी, किसी के बूढ़े माता-पिता तो, किसी की बीमार पड़ी हुई पत्नी महात्माजी का दर्शन करना चाह रहे थे। वहाँ आने में वे असमर्थ थे।

महात्मा जी ठहरे दयालु। किसी को निराश करना तो उन्होंने सीखा ही न थी। वे तुरंत उन व्यक्तियों के घर चलने को तैयार हो गए। अब तो इनके साथ-साथ शिष्यों को भी महात्माजी के पीछे-पीछे चलना ही पड़ा।

जिस भी घर में महात्माजी जाते, लोगों की भीड़ लग जाती। वे सभी से स्नेहपूर्वक बातें करते। बीमारों को सहानुभूति दिखलाते, उनके सिर पर हाथ फिराते और जल्दी ठीक होने का आशीर्वाद देते। उनका इस प्रकार अपार प्रेम पाकर रोगी के चेहरे पर भी चमक आने लगी।

महात्माजी के पास कोई फलों की टोकरी लेकर आया, कोई मेवे लेकर आया तो कोई मिठाई। महात्माजी उन्हें लेते और सभी को बाँट देते। अन्य पंडितों की भाँति वे अपने घर कुछ भी खाने की कोई चीज नहीं ले जाते थे। सभी लोग उनकी इस निस्पृहता से बड़े ही प्रभावित होते थे।

शिष्य सोच रहे थे कि उन्हें भी कोई फल आदि लाकर देगा। पर किसी ने भी उन्हें कुछ न दिया। अब तो उन्हें लोगों पर और भी गुस्सा आने लगा। वे सोचने लगे-'आखिर हम में ऐसी क्या कमी है कि हमें कुछ भी नहीं दिया जा रहा है।'

भीड़ से जैसे-तैसे निपटकर महात्माजी घर चलने को तैयार हुए। शिष्यों ने चैन की साँस ली। वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। जैसे-तैसे भूख से कुड़कुड़ाते हुए रास्ता पार किया। घर जाकर खाना बनाया तब कहीं खाने को मिला।

एक शिष्य से आखिर रहा न गया। उसने पूछ ही लिया-'गुरुजी! वर्षों हमें आपके पास रहते हो गए। आपकी भाँति हम भी

योग की साधनाएँ करते हैं, तपस्या करते हैं। पर यह क्या बात है कि आपका तो सभी सम्मान करते हैं पर हमारी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता?''

महात्माजी गंभीर होते हुए कहने लगे-'पुत्रो! जो देता है, वही पाता है। हम बिना किसी बदले की भावना से यदि दूसरों को दें, दूसरों की सहायता करें, तो फिर बहुत कुछ हमें अपने आप ही मिल जाता है। तपस्या का अर्थ केवल आसन और प्राणायाम ही नहीं है, दीन-दुखियों की सेवा करना, दूसरों का भला करना सच्ची तपस्या है। तुम्हारा सारा ध्यान-जप-तप में रहता है, पर इसके साथ-साथ तुम सभी में भगवान का रूप देखते हुए उनसे अच्छा व्यवहार करो। फिर देखोगे, सभी तुम्हारा कितना आदर करते हैं। दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने लिए चाहते हो। तुम्हारे जप-तप से बस तुम्हारा ही हित होगा। केवल तुम्हारा व्यवहार ही ऐसा है जिससे दूसरे लाभ उठा सकते हैं।

शिष्य की समझ में अब सारी बात आ गई थी। उस दिन से वे महात्मा जी के गुणों का अनुकरण करते हुए समाज की सेवा में जुट गए।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।